ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

प्रकाशक
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

•

प्रथम संस्करण
मई १६५८
मूल्य तीन रुपये

•

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय,
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

सर्वाधिकार सुरक्षित

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—७६

2631

शाइरीके नये मोड़

पहला मोड़

[१९४६ ई० से मार्च १९५८ तककी शाइरीकी एक झलक]

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

मेरे अज्ञात हितैषी !

न जाने इस वक्त तुम कहाँ हो ? न मैं तुम्हें जानता हूँ और न तुम मुझे जानते हो, फिर भी तुम कभी-कभी याद आते रहे हो। बक़ौल फ़िराक़ गोरखपुरी—

मुद्दतें गुज़रीं तेरी याद भी आई न हमें
और हम भूल गये हों, तुझे ऐसा भी नहीं

तुम्हें तो २६ जनवरी १९२१ ई० की वह रात स्मरण नहीं होगी, जब कि तुमने मुझे अन्धा कहा था। मगर मैं वह रात अभी तक नहीं भूला हूँ। रौलट-ऐक्टके आन्दोलनसे प्रभावित होकर मई १९१९ में चौरासी-मथुराके जैन-महाविद्यालयसे मध्यमाकी पढ़ाई छोड़कर मैं आगया था और काँग्रेसी-कार्योंमें मन-ही-मन दिलचस्पी लेने लगा था। उन्हीं दिनों सम्भवतः २६ जनवरी १९२१ ई० की बात है, रातको चाँदनी-चौकसे गुज़रते-समय बल्लीमारानके कोनेपर चिपके हुए काँग्रेसके उर्दू-पोस्टरको खड़े हुए बहुत-से लोग पढ़ रहे थे। मैं भी उत्सुकतावश वहाँ पहुँचा और उर्दूसे अनभिज्ञ होनेके कारण तुमसे पूछ बैठा—"बड़े भाई ! इसमें क्या लिखा हुआ है" ? तुमने फ़ौरन दन्दान-शिकन जवाब दिया—"अमाँ अन्धे हो, इतना साफ़ पोस्टर भी नहीं पढ़ा जाता।" जवाब सुनकर मैं खिसियाना-सा खड़ा रह गया। घर आकर गैरतने तख्ती और उर्दूका क़ाएदा लानेको मजबूर कर दिया।

अब मैं कई बार सोचता हूँ कि कहीं फिर तुमसे मुलाक़ात हो जाये तो मेरी आँखोंकी रही-सही धुन्ध भी दूर हो जाये। लेकिन वह मुमकिन नहीं। अतः उस मीठे तानेकी स्मृतिस्वरूप यह कृति तुम्हें भेंट कर रहा हूँ। जहाँ भी हो, मेरे अज्ञात हितैषी ! अपने इस अन्धे पथिककी भेंट स्वीकार करना।

१ मई १९५८ ई०] —गोयलीय

समा-ख़राशी [समयका अपव्यय]

१. 'शाइरीके नये मोड़' के अन्तर्गत जिस शाइरीका परिचय दिया जायेगा, उसका प्रचलन १९३५ ई० के आस-पास हुआ। १९३५ से १९५८ तक शाइरीने कई मोड़ लिये हैं। प्रस्तुत प्रथम मोड़में १९४६ से मार्च १९५८ ई० तककी शाइरीका बहुत संक्षेपमें उल्लेख हो सका है। आगेके मोड़ोंमें इस २२-२३ वर्षकी शाइरीकी गति-विधिका यथा-स्थान अध्ययन प्रस्तुत किया जायगा। यह प्रथम मोड़ तो केवल उसकी झलक मात्र है।

२. इस दौरमें यूँ तो सभी तरहकी शाइरीका विकास हुआ, किन्तु तरक्क़ी-पसन्द शाइरीका बहुत अधिक विकास हुआ। इसे नई शाइरी, इश्तराकी शाइरी अथवा नया अदब भी कहते हैं। हिन्दीमें कहना चाहें तो प्रगतिशील शाइरी, साम्यवादी शाइरी या नवीन शाइरी कह सकते हैं।

३. तरक्क़ी-पसन्द शाइरी सिर्फ़ उसी शाइरीको कहा जाता है, जो मार्क्सवादियों, कम्युनिस्टों अथवा रूसके प्रबल अनुयायियों-द्वारा प्रस्तुत की ज़ा रही है। तरक्क़ीपसन्द शाइरों और नये अदबके लेखकोंका अपना बहुत बड़ा समूह है, अपनी निजी विचारधाराएँ हैं और अपने पक्षके प्रचारका एक ढंग है। अपनेसे भिन्न विचार रखनेवाले शाइर और लेखकको वे ग़ैर-तरक्क़ी-पसन्द कहते हैं। जो शाइर या लेखक मार्क्सवादी या रूसी विचारधाराके पूर्ण समर्थक नहीं हैं; वे चाहे कितनी ही नवीन और उन्नतिपूर्ण रचनाएँ करें, तरक्क़ी-पसन्द-शाइर उन्हें अपने समूहमें सम्मिलित नहीं करते।

४. वर्त्तमान युगमें यूँ तो सभी विचारधाराओंके शाइर अपनी रुचिके अनुकूल—ग़ज़ल, नज़्म, रूबाई, क़िते, आज़ाद नज़्म (मुक्त छन्द) सॉनेट, गीत आदि कह रहे हैं, परन्तु 'शाइरीके नये मोड़' के मोड़ोंमें

निम्न विचारधाराओंके मुख्य-मुख्य प्रतिनिधि शाइरोंका परिचय एवं कलाम दिया जायेगा—

वर्त्तमानयुगीन शाइर—परम्परानुसार शाइरीमें किसी उस्तादके शिष्य। व्याकरण-छन्दशास्त्रकी सीमामें रहते हुए नवीनताके समर्थक, साथ ही प्राचीन अच्छी बातोंके अनुयायी।

नवीन शाइर—अपनी आयु और विचारोंके कारण इसी युगके शाइर। युगानुसार शाइरीमें नवीन-नवीन प्रयोग करते हैं। हर उन्नति और सुधारके समर्थक, किन्तु रूसी विचारधाराके अन्ध अनुयायी नहीं।

तरक़्क़ी-पसन्द शाइर—हरेक पहलूसे केवल रूसके अनुयायी।

तरक़्क़ी-पसन्द-विरोधी शाइर—जो प्रत्येक प्राचीन परम्पराका मखौल उड़ाते हैं, या भिन्न मत रखनेवालोंको बु़र्जुआ या ग़ैर-तरक़्क़ीपसन्द कहते हैं। उन तरक़्क़ीपसन्द शाइरों या नये अदबके लेखकोंके विरोधी।

५. तरक़्क़ी-पसन्द और ग़ैर-तरक़्क़ी-पसन्द शाइरी क्या है? नई-शाइरी और पुरानी शाइरीमें क्या अन्तर है? यह तो वे विज्ञ पाठक सरलतासे समझ ही लेंगे, जिन्होंने 'शेरो शाइरी' 'शेरो-सुख़न' पाँचों भाग, 'शाइरीके नये दौर' और प्रस्तुत 'नवीन मोड़' का ध्यान पूर्वक अध्ययन किया है। फिर भी आगेके मोड़ोंमें उत्तरोत्तर यथावश्यक जानकारी सुलभ होती जायगी।

६. सन् १९४६ से मार्च १९५८ तक जो ८–१० उर्दू-मासिक पत्र मेरे अवलोकनमें आते रहे हैं। तक़रीबन ७००–८०० अंकोंमें-से अपनी रुचिके अनुकूल जो कलाम डायरीमें नोट करता रहा हूँ, उनमें-से बहुत-से अशआर ऐसे हैं, जिन्होंने मुझे तड़पा-तड़पा दिया है और एक-एक शेरने गुनगुनानेके लिए कई-कई रोज़ मजबूर कर दिया है। यह सब कलाम 'बज़्मे-अदब' परिच्छेदमें दे दिया गया है। कुछ पूरी या अधूरी ग़ज़लें और नज़्में उन पाठकोंके मनोरंजनार्थ भी देनी पड़ी हैं, जिनका

उलाहना था कि कुछ पूर्ण भी देनी चाहिएँ, ताकि उन्हें गाया जा सके। कुछ अशआर केवल इसलिए दिये गये हैं, ताकि पाठक अन्तर समझ सकें और तुलनात्मक अध्ययन करते समय उदाहरण-स्वरूप काम आ सकें।

७. प्रस्तुत मोड़के 'बज़्मे–अदब' परिच्छेदमें इस युगके ख्याति-प्राप्त प्रतिनिधि शाइरोंका कलाम जान बूझकर नहीं दिया गया है, क्योंकि उनका विस्तृत परिचय एवं कलाम दूसरे भागसे दिया जा रहा है। उक्त परिच्छेदमें दिये गये कुछ उदीयमान और कुछ उस्तादाना मर्तबेके ऐसे शाइर भी हैं, जिनका विस्तृत परिचय एवं कलाम कभी-न-कभी दिये बिना मुझे चैन नहीं आयेगा।

८. प्रस्तुत मोड़में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण रखनेवाले शाइरोंके कलामकी यत्र-तत्र झलक मिलेगी। आजका शाइर ग़ज़लमें भी इन्क़िलाबी, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, साम्यवादी आदि विचारोंकी पुट दिये बग़ैर नहीं रहता। प्रेयसीसे वस्लो-हिज्रकी बातें करते हुए भी ग़मे-दौराँ नहीं भूलता। मिलनके तनिक-से क्षणोंमें भी क्रान्तिकारी भावना प्रकट कर देता है। नवीन शाइरीने अपना लबो-लहजा कितना बदल दिया है और वह कितने मोड़ोंसे गुज़रती हुई कहाँ-से-कहाँ आ पहुँची है? इसका आभास प्रस्तुत भागसे मिलना प्रारम्भ हो जायगा। इस युगके सभी विचारधाराओंके मुख्य-मुख्य प्रतिनिधियोंका परिचय एवं कलाम आगेके भागोंमें देनेके बाद अन्तिम भागमें इस युगका इतिहास और अध्ययन प्रस्तुत किया जायगा।

९. नज़्मोंके ऊपर शीर्षक हैं और ग़ज़लें बग़ैर शीर्षककी हैं। अतः नज़्म और ग़ज़लमें क्या अन्तर है, यह सरलतासे समझा जा सकेगा।

१०. जिन मासिक पत्रोंसे एक भी शेर लिया है। आभार-स्वरूप उनका नाम कलामके नीचे दे दिया गया है, किन्तु कुछ अशआरके नीचे नाम नहीं दिये जा सके। इसका कारण यही है कि किसी अंकसे २–४ शाइरोंके शेर नोट करने पर अन्तके शेरपर पत्रका नाम अंकित किया गया। डायरीमें नोट करते समय यह ख्वाबो-खयाल भी न था कि

स्वान्तःसुखायके लिए की गई संचित पूँजी भी ज़मींदारी प्रथाके समान जनताकी हो जायगी। पुस्तकमें देते समय पहिले अक्षरवार देनेका विचार नहीं था, किन्तु पुनरावृत्तिके भयसे और उपयोगिताकी दृष्टिसे अक्षरवार रखना ही उचित प्रतीत हुआ। अतः जब अक्षरवार कलामका चयन हुआ तो पूरी सावधानी बरतते हुए भी ऊपरके शेरोंके नीचे पत्रोंका नाम कहीं-कहीं अंकित करनेसे रह गया। कहीं-कहीं ऐसा भी हुआ है कि एक ही शाइरका कलाम कई अंकोंसे चुना गया है, किन्तु अक्षरवार दिये जानेके कारण उन सब अंकोंका उल्लेख न होकर एक-दो का ही हुआ है। प्रस्तुत पुस्तकमें दिये गये कलामको जो पाठक पूर्ण देखना चाहें, वह उसके नीचे दिये गये पत्रको मँगाकर देखें, मुझे लिखनेका कष्ट न करें।

११. जिस शाइरका कलाम मुझे इन बारह वर्षोंमें पत्र-पत्रिकाओंके अम्बारमें जितना उपलब्ध हुआ, उसमें-से अपनी रुचिके अनुसार चयन-कर लिया, जिनका कम उपलब्ध हुआ, कम चयन हुआ। केवल यही कारण है कि किसी शाइरका अधिक और किसीका कम कलाम दिया गया है।

'सौदा'! ख़ुदाके वास्ते कर क़िस्सा मुख़्तसर।
अपनी तो नींद उड़ गई तेरे फ़साने से॥

डालमियानगर (बिहार)
१ मई १९५८ ई०

विषय-सूची

नई लहर

नवीन धारा

नरमेध यज्ञ

देश-प्रेम

नवीन-चेतना

बज़्मे-अदब

शाइरीके नये मोड़

[१९४६ से १९५७ तककी नवीन शाइरी]

नई लहर
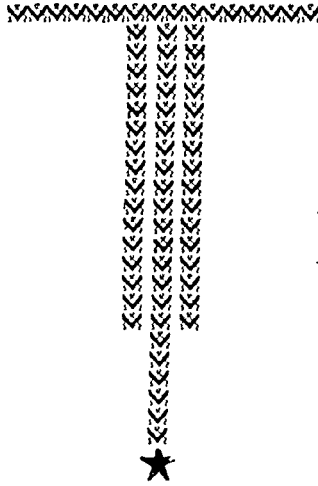
१ भारत-विभाजन

२ स्वराज्य-प्राप्ति

३ राष्ट्र-पिताकी शहादत

४ प्रेरणात्मक-शाइरी

इन बारह वर्षोंमें उर्दू-शाइरीमें अभूतपूर्व परिवर्त्तन एवं परिवर्द्धन हुआ है। उसका लबो-लहजा बदल गया है, सोचने और विचारनेके दृष्टिकोणमें अन्तर आ गया है। इन बारह वर्षोंमें हुई इन तीन मुख्य घटनाओं—१ भारत-विभाजन, २ स्वराज्य-प्राप्ति, ३ राष्ट्र-पिताकी शहादत—पर बहुत अधिक कहा गया है, और कहा जा रहा है।

यदि उक्त तीनों विषयोंकी नज़्मों और ग़ज़लोंका संकलन किया जाय तो १०–१२ पोथे तैयार हो सकते हैं। यहाँ केवल एक भागमें अत्यन्त संक्षेपमें उल्लेख किया जा रहा है। इस दौरके नवयुवक शाइर नज़्म और ग़ज़ल अक्सर दोनों कहते हैं। अतः उद्धरणोंमें ग़ज़लों-नज़्मों दोनोंके ही अशआर दिये जा रहे हैं।

भारत-विभाजन

भारत-विभाजन मुस्लिम-लीगकी ज़िदके कारण हुआ। उसकी इस साम्प्रदायिक दूषित मनोवृत्तिका कितना घातक परिणाम हुआ? कितना बड़ा नरहत्याकाण्ड हुआ? कितनी युवतियोंकी इस्मतदरी हुई? कितने बालक बिलख-बिलखकर मरे? कितने धार्मिक स्थान और लोकोपयोगी संस्थाएँ नष्ट कर दी गईं और कितनी अधिक संख्यामें धन बरबाद हुआ, इन सबका लेखा-जोखा भले ही हमारे पास सुरक्षित नहीं है। फिर भी शाइरोंने जो कुछ कहा है, यदि वही सब एकत्र कर लिया जाय तो एक प्रामाणिक इतिहास बन जायगा। संसारमें इस तरहका काण्ड इससे पूर्व नहीं हुआ। भारत-विभाजनसे पूर्व मुसलिमलीगकी विषैली मनोवृत्तिको आनन्दनारायण मुल्लाने यूँ नज़्म किया था—

जहाँसे अपनी हक़ीक़त छुपाये बैठे हैं
यह लीगका जो घरौन्दा बनाये बैठे हैं
....

भड़क रही है तअस्सुबकी[1] दिलमें चिनगारी
चराग़े-अम्लो-हक़ीक़त बुझाये बैठे हैं
हरेकके दीन पै इल्ज़ामे-काफ़िरी रखकर
हरेक कुफ़्रपै ईमान लाये बैठे हैं
सजाये बैठे हैं दूकाँ वतन-फ़रोशीकी
हरेक चीज़की क़ीमत लगाये बैठे हैं
क़फ़समें[2] उम्रमें कटे जीमें है ग़ुलामोंके
चमनकी राहमें काँटे बिछाये बैठे हैं
नहीं शरीक मुसीबतमें हिन्दकी लेकिन—
इराक़ो-शामसे रिश्ते मिलाये बैठे हैं
गिराई एक पसीनेकी बून्द भी न कभी
मता-ए-क़ौममें[3] हिस्सा बटाये बैठे हैं

....

ख़ुदाकी शान इसी सरकी रफ़अतोंपै[4] ग़रूर
जो आस्ताने-अदूपर[5] झुकाये बैठे हैं

....

उक्त शेर नज़्मके हैं। ग़ज़लका क्षेत्र सीमित है, उसका अन्दाज़े-बयान भी नज़्मसे भिन्न होता है और एक शेरमें ही ग़ज़लकी ज़बानमें सम्पूर्णभाव व्यक्त करना होता है। ग़ज़लके निम्न शेरमें मुस्लिम लीगकी इसी मनोवृत्तिको देखिए 'मुल्ला' किस ख़ूबीसे व्यक्त करते हैं—

---

१. द्वेष-भावकी; २. पराधीनतामें; ३. देशके धनमें; ४. उच्चतापर घमण्ड; ५. शत्रुकी चौखटपर।

जोशे-तक़सीम वारिसोंका न पूछ ।
ज़िद यह है कि माँकी लाश कटके बटे

माँकी लाशको काटकर बाँटनेवालोंसे सावधान रहनेके लिए ग़ज़लके दो शेरमें मुल्ला चेतावनी देते हुए फ़र्माते हैं—

बुलबुले-नादाँ! ज़रा रंगे-चमनसे होशयार।
फूलकी सूरत बनाये सैकड़ों सैयाद हैं ॥
आशियाँ वालोंकी अब गुलशनमें गुञ्जाइश नहीं ।
आज सहने-बाग़में या सैद[1] या सैयाद[2] हैं ॥

जब इन सैयादोंने चमन बाँट लिया तो मुल्ला इन व्यथाभरे स्वरोंमें कराह उठे—

यूँ दिल भी कभी होते हैं जुदा, 'मुल्ला' यह कैसी नादानी ?
हर रिश्ता ज़ाहिर तोड़ दिया, ज़ंजीरे-निहानी[3] भूल गये ॥

ज़ंजीरे-निहानी तोड़ देने की नादानीका परिणाम क्या हुआ ? यह भी मुल्ला साहबके घायल दिलसे पूछिए—

कैसा ग़ुबार चश्मे-मुहब्बतमें आ गया ।
सारी बहार हुस्नकी मिट्टीमें मिल गई ॥

मुल्ला साहबने इस एक शेरमें सभी कुछ कह दिया । कुछ भी कहना शेष नहीं रहा । भारत-विभाजनसे स्वराज्य-प्राप्तिका सब मज़ा किरकिरा हो गया । वे ख़िज़ांनसीब जो बहारके न जाने कबसे मुन्तज़िर थे और दिलोंमें हज़ारों अरमान छिपाये हुए थे । बहार आते ही बरबाद हो गये । बक़ौल किसी के—

---

१. शिकार; २. शिकारी; ३. अन्तरंगका बन्धन ।

ख़ामोश हो गया है चमन बोलता हुआ

अनगिनत बसे-बसाये घर वीरान हो गये, असंख्य फलते-फूलते परिवार उजड़ गये। लाखों युवक भरी जवानीमें शहीद कर दिये गये। लाखों युवतियाँ अपहृत कर ली गईं। लाखों वृद्धाएँ निपूती हो गईं, लाखों माईके लाल यतीम होकर बिलखते फिरने लगे। लाखों वृद्ध, अशक्त, अपाहिज निराश्रित होकर एड़ियाँ रगड़-रगड़कर जीवित रहनेको बाध्य हुए। समस्त देश श्मशान-सा बन गया—

देते हैं सुराग़ फ़स्ले-गुलका।
शाख़ोंपै जले हुए बसेरे॥

—अज्ञात

आँखोंसे अक्सर उनकी आँसू निकल गये हैं।
क्या-क्या भरे गुलिस्ताँ सावनमें जल गये हैं॥
आज़ादियाँ तो देखीं, बरबादियाँ भी देखो।
कैसे हसीन गुलशन काँटोंपै ढल गये हैं॥

—अज्ञात

कुछ इस तरहसे बहार आई है कि बुझने लगे।
हवा-ए-लाल-ओ-गुलके चराग़े-दीद-ओ-दिल॥

—अज्ञात

तमाम अहले-चमन कर रहे हैं यह महसूस।
बहारे-नौका तबस्सुम[1] तो सोगवार-सा[2] है॥

—ज़ोहरा निगाह

---

१. नई नवेली बहारकी मुसकान; २. शोकाकुल-सा।

बहारे-नौका तबस्सुम सोगवार-सा क्यों है और फला-फूला चमन वीरान किन लोगोंने कर दिया ? यह जाननेके लिए 'अदम' की 'दस्तक' नज़्मके यह शेर पर्याप्त होंगे—

आज शायद भेड़िये फिर घूमते हैं शहरमें
भूककी चिनगारियाँ लेकर दहाने-क़हरमें[1]
मस्जिदोंसे अज़दहे[2] निकले हैं बलखाते हुए
मन्दिरोंसे ज़लज़ले उट्ठे हैं थर्राते हुए
आँधियोंका भूत उठा है दाँत चमकाता हुआ
मौतका जबड़ा खुला है आग बरसाता हुआ
यह सनमख़ानोंके हीरो[3], यह हरमके शहसवार[4]।
बनके निकले हैं ख़ुदाओंकी तबीअतका ग़ुबार ॥

....

आ गया है डाकुओंका क़ाफ़िला[5] दहलीज़पर
बुझ चुकी है अम्नकी क़न्दील[6] सीना पीटकर

अपने अन्धे अनुयायियोंको साम्प्रदायिक नेता अबलाओंका सतीत्व लूट लेनेके लिए किस प्रकार फ़तवे देते थे ? यह भी 'अदम' साहबकी ज़बानेमुबारकसे सुनिए—

देखते क्या हो बदहवासीसे ?
क्या हुआ है तुम्हारी ग़ैरतको
इतनी ताख़ीर[7] क्यों इताअतमें[8]
हुक्म सिर्फ़ एक बार होता है

---

१. मृत्युरूपी मुखमें; २. अजगर; ३. मन्दिरोंके नेता; ४. मस्जिदोंके हिमायती; ५. गिरोह, दल; ६. शान्ति-दीप-शिखा; ७. विलम्ब; ८. आज्ञा पालनमें ।

काट दो इनकी छातियोंके नुमूद[१]
छातियाँ हैं कि जाँ गुदाज़ सरूद[२]
बाँधदो इनके बाल खम्बोंसे
और इनके हसीन जिस्मोंपर
ताज़यानोंके[३] फूल बरसाओ
बेटियाँ हैं यह उन दरिन्दोंकी
जो तुम्हारे लहूके प्यासे हैं

देखते क्या हो बदहवासी से ?
ऐसी भरपूर और लज़ीज़ ग़िज़ा
रोज़ कब दस्तयाब होती है
पिल पड़ो इन जवाँ ग़ज़ालों पर[४]
इनकी आहो-बुकापै[५] मत जाओ
उनकी आहो-बुकापै ग़ौर करो
जिनको तुम छोड़ आये हो पीछे
और जो दुश्मनोंके पहलूमें
हँस रही हैं तुम्हारी ग़ैरतपर
जिनके नज़दीक अब तुम्हारा वजूद[६]
एक खंज़ीरके[७] बराबर है

....

जब दिन-दहाड़े अबलाओंकी इसतरह लूट मची हो, तब अपना देश छोड़ जानेके सिवा और उपाय भी क्या था ? मगर जाने-आनेके मार्ग भी

१. स्तनोंके अंश; २. मनको हिलोर देनेवाले वाद्य; ३. चाबुकोंके ४. मृगनयनियोंपर; ५. रुदन-विलापपै; ६. अस्तित्व; ७. जंगली सूअरके ।

तो अवरुद्ध थे। सर्वत्र आततायी-ही आततायी विचर रहे थे। अबलाओंकी उस दयनीय स्थितिका 'अदम' साहबने देखिए कैसा सजीव चित्रण किया है—

आ बहन छोड़ जायें अपना देस
अब इसे आँधियोंने घेरा है
कोई तेरा न कोई मेरा है
हर तरफ़ ख़ून और अँधेरा है
आ बहन छोड़ जायें अपना देस

अब यहाँ क़हरमान[1] बसते हैं
आदमी-आदमीको डसते हैं
रहम मँहगा है ज़ुल्म सस्ते हैं
आ बहन छोड़ जायें अपना देस

आह! लेकिन यह आस भी तो नहीं
बच सकें आगसे पनाहगज़ीं[2]
मेरी तजवीज़ है यहीं न कहीं
किसी अन्धे कुएँकी लहरोंमें
साँसको बन्द करके सो जायें

मालूम होता है कि इन्सान दरिन्दे बन गये हैं और अपने खूँखार जबड़े खोले हुए घूम रहे हैं—

यह दुनिया है या है दरिन्दोंकी[3] बस्ती?
है ख़ाइफ़[4] यहाँ आदमी आदमीसे

—एजाज़ सद्दीक़ी

---

१. आफ़तके परकाले, आततायी; २. शरणार्थी; ३. जंगली जानवरोंकी; ४. भयभीत।

जब इन्सान दरिन्दे और वहशी बन गये, तब उनके खूनी पंजोंने क्या-क्या ज़ुल्मो-सितम किये। यह 'अर्श' मलसियानी साहबसे मालूम कीजिए—

बस्तियोंकी बस्तियाँ बरबादो-वीराँ हो गईं
आदमीकी पस्तियाँ, आख़िर नुमायाँ हो गईं
क़त्लो-ग़ारतके हज़ारों दाग़ लेकर वहशतें
आज सुनते हैं कि फिर इस्मत बदामाँ हो गईं

इस बरबादी-ओ-वीरानीका दृश्य ग़ज़लके एक शेरमें जगन्नाथ साहब 'आज़ाद' देखिए किस ख़ूबीसे खींचते हैं—

बस एक नूर झलकता हुआ नज़र आया।
फिर उसके बाद न जाने चमनपै क्या गुज़री॥

मनुष्योंकी यह रक्त-लोलुपता देखकर दरिन्दे भी सहम गये—

दरिन्दोंमें हुआ करती हैं सरगोशियाँ इसपर।
कि इन्सानोंसे बढ़कर कोई ख़ूँ आशाम क्या होगा॥

—अदीब मालीगाँवी

भारत-विभाजनका परिणाम यह हुआ कि भारतीय हिन्दू-मुसलमान अपने ही देशमें विदेशी बन गये। मुस्लिमलीगी अधिकृत क्षेत्र वहाँके हिन्दुओंके लिए और काँग्रेसी अधिकृत क्षेत्र मुसलमानोंके लिए विदेश हो गया[1] भाई-भाईका शत्रु हो गया। हिन्दू-मुसलमान दोनों अपने जन्म-स्थानों और पूर्वजोंकी स्मृतियोंको बेगाना देश समझनेके लिए मजबूर हो गये—

तू अपनेको ढूँढ रहा है दुनियाँके मामूरेमें।
यह बेगाना देस है ऐ दिल! इसमें सब बेगाने हैं॥

---

१. हर्ष है कि स्वतंत्र होते ही भारतने अपनेको निरपेक्ष देश घोषित कर दिया और यहाँ हर धर्म और सम्प्रदायके व्यक्ति प्रेम-पूर्वक बिना किसी भेद-भावके रहते हैं।

देश छोड़कर लाखों नर-नारियोंके बिलखते हुए क़ाफ़िले इधरसे उधर आ-जा रहे हैं, परन्तु न तो किसीको मंज़िलका पता है, न किसीको रास्तोंका, फिर भी बच्चोंको कान्धोंपै लादे, बूढ़े माँ-बापको सहारा दिये बढ़े जा रहे हैं—

मंज़िलसे भी नावाक़िफ़ हैं, राहसे भी आगाह नहीं।
अपनी धुनमें फिर भी रवाँ हैं, यह भी अजब दीवाने हैं॥

—जगन्नाथ आज़ाद

उन दिनों धर्मोन्माद और मज़हबी दीवानगीका यह आलम था कि उस विषाक्त वातावरणमें भले आदमियोंका जीना दूभर हो गया था—

जो धर्मपै बीती देख चुके, ईमाँपै जो गुज़री देख चुके।
इस रामो-रहीमकी दुनियाँमें इन्सानका जीना मुश्किल है॥

—अर्श मलसियानी

जब रामो-रहीमके बन्दे ज़हरीले नाग बन जायें, तब उनसे बचा भी कैसे जाय?

डंक निहायत ज़हरीले हैं, मज़हब और सियासतके[1]।
नागोंकी नगरीके बासी! नागोंकी फुंकार तो देख॥

—अर्श मलसियानी

इन ज़हरीले धर्मके ठेकेदारों और राजनैतिक कुचक्रियोंके कारनामे उजागर किये जायें तो—

ख़बसे-बातिन ख़ुदापरस्तोंके[2]
मंज़रे-आमपर अगर लाये[3]

---

१. राजनीतिके; २. ख़ुदा परस्तोंके अपवित्र एवं नीच कार्य्य; ३. यदि प्रकट कर दिये जायें।

वाक़िया है कि शर्मसारीसे
मस्जिदोंके चराग़ बुझ जायें

—अदम

मन्दिरों-मस्जिदोंके चराग़ भले ही शर्मसे बुझ जायें, मगर इनके मस्तकपर एक पसीनेकी बूँद भी दिखाई नहीं देगी। जो लाज-शर्मतकको बेच सकते हैं, वे देशको बेचने अथवा बरबाद करनेमें क्यों हिचकेंगे ?

सुना, कि किस तरह रंगीन ख़ानक़ाहोंमें[1]
ज़मीरे-जुहोद[2] है लिथड़ा हुआ गुनाहोंसे
सुना, कि कितनी सदाक़तसे मस्जिदोंके इमाम
फ़रोख़्त करते हैं बेख़ौफ़ फ़तवाहा-ए-हराम
जो बे दरेग़ ख़ुदाको भी बेच देते हैं
ख़ुदा भी क्या है हयाको भी बेच देते हैं
नमाज़ जिनकी तिजारतका एक हीला है
ख़ुदाका नाम ख़राबातका[3] वसीला है

—अदम

मुस्लिमलीगकी साम्प्रदायिक घातक मनोवृत्तिके परिणामस्वरूप भारतका विभाजन होनेके कारण जितनी अधिक संख्यामें हिन्दू-मुसलमानोंको अपनी-अपनी जन्म-भूमियाँ और पूर्वजोंकी क्रीड़ास्थलियाँ जिस बेबसीमें छोड़नी पड़ीं, उसकी याद भुलाये नहीं भूलतीं। एक चबक-सी, एक टीस-सी सीनेमें बराबर मालूम होती रहती है। भारत-विभाजनके तीन वर्ष बाद भी रामकृष्ण मुज़तर यह कहनेपर मजबूर हुए—

---

१. पीरों-फ़क़ीरोंके निवासस्थानमें; २. पाखण्डी आत्मा; ३. शराबखानोंके साधन हैं।

उजड़के आये हैं जो वतनसे, उन्हें ज़रा इक नज़र तो देखो।
अभी तक उन अहलेग़मकी आँखोंमें आँसुओंकी नमी मिलेगी॥

इतनी अधिक जन-धनकी आहुति लेनेके बाद भी साम्प्रदायिक देवी अभी तृप्त नहीं हुई है। आज भी उसका विकराल मुँह खुला हुआ है। इसीसे खीझकर 'मुल्ला' साहब यह अहद करने पर मजबूर हुए हैं—

तुझे मज़हब मिटाना ही पड़ेगा रू-ए-हस्तीसे।
तेरे हाथों बहुत तौहीने-आदम होती जाती है॥

इन धर्मके ठेकेदारों और मज़हबी दीवानोंद्वारा इन्सानियतकी ऐसी मिट्टी ख़राब हुई है कि—

क़ुबूल करते न हम अज़लमें किसी तरह यह लिबासे-इन्साँ।
ख़बर जो होती कि पस्त इस दर्जह फ़ितरते-आदमी[1] मिलेगी॥

—आरिफ़ बाँकोटी

इन्सानियत ख़ुद अपनी निगाहोंमें है ज़लील!
इतनी बुलन्दियोंपै तो इन्साँ न था कभी?

—जगन्नाथ आज़ाद

इन्सान, इन्सान नहीं रहा, बक़ौल शम्स क़ुरैशी—

जिन्हें समझते थे हम मुहज़्ज़िब, वोह वहशियोंसे भी पस्त निकले

यदि मनुष्य, मनुष्य न बना और उसने विवेक-दीपक हाथमें नहीं लिया तो—

चराग़ इन्सानियतके हरसू[2] न जबतक इन्साँ जला सकेंगे।
रहेगा छाया हुआ अँधेरा, फ़िज़ा[3] भी तारीक[4] ही मिलेगी॥

—वारिस उलक़ादिरी

---

१. मानव-स्वभाव; २. चारों तरफ़; ३. वातावरण; ४. अँधेरी।

स्वराज्य-अमृतपान करनेके लिए भारतीय बहुत उत्सुक और अधीर थे। अर्द्धशतीतक निरंतर संघर्ष करनेके बाद स्वराज्य हाथ लगा, परन्तु उसके साथ सम्प्रदायवाद-विष भी पल्ले पड़ा। विजयोन्मादमें विवेक

स्वराज्य-प्राप्ति

विसारकर इसी विषको प्रथम पान कर लिया गया। बापूके सुझानेपर स्वराज्यामृत भी गलेमें उतार लिया गया, किन्तु अमरत्व प्राप्त न हो सका। विष और अमृत शरीरमें पड़े-पड़े परस्पर विरोधी कार्य कर रहे हैं। एक घुटन-सी, एक वेदना-सी, एक टीस-सी, एक चुभन-सी, महसूस हो रही है। स्वराज्यके सम्बन्धमें जनताके मनमें बहुत मधुर एवं मोहक आशाएँ थीं—

चमनसे जौरे-ख़िजाँ मिटेगा, बहारको ज़िन्दगी मिलेगी।
हँसेंगे फूल और खिलेंगी कलियाँ, फ़िज़ाओंको ताज़गी मिलेगी॥

—नसीम भरतपुरी

यह सोचते थे सहर[1] जो होगी, तो इक नई ज़िन्दगी मिलेगी।
सकून[2] दिलको, जिगरको राहत[3], निगाहको रोशनी मिलेगी॥
चमनकी इक-इक रविशपै हमको, दुलहनकी-सी दिलकशी मिलेगी।
क़दम-क़दमपै खिलेंगे ग़ुंचे चहारसू ताज़गी मिलेगी॥
न होगा फिर बाग़बाँसे शिकवा, न दश्ते-गुलचींसे कुछ शिकायत।
समझ रहे थे यह अहले-गुलशन, हँसी मिलेगी, ख़ुशी मिलेगी॥

—मसहूद मुफ़्ती

वतनकी आज़ादियाँ मयस्सर हुईं तो इतना ही हमने जाना।
ख़ुशी-ख़ुशी ज़िन्दगी कटेगी, दिलोंको ख़ुरसन्दगी[4] मिलेगी॥
ग़िज़ा मिलेगी, मिलेगा कपड़ा, जो चाहेगा दिल वही मिलेगा।
उठा ग़ुलामीका सरसे साया, दिलोंको अब ख़ुर्रमी[5] मिलेगी॥

—महमूद मुज़फ़्फ़रपुरी

---

१. सुबह; २. चैन; ३. आराम-चैन; ४. ख़ुशी; ५. शादाबी, तरोताज़गी।

न जाने कितनी साधनाओं, तपस्याओं, बलिदानोंके बाद स्वराज्य-वसन्त आया, परन्तु अपने साथ प्रलयंकारी आँधियाँ भी लेता आया। भारत-विभाजन, हत्याकाण्ड, नारी-अपहरण, देश-निष्कासन आदि बलायें उसके साथ इस तरह घुली-मिली आईं कि वसन्तोत्सव पतझड़में परिवर्तित हो गया—

नई सहर[1] लाई थी सँदेसा कि अब नई ज़िन्दगी मिलेगी।
किसे ख़बर थी हयात[2] ताज़ा लहूमें लिथड़ी हुई मिलेगी॥

—मंज़र सिद्दीक़ी

क़फ़ससे छुटनेपै शाद थे हम, कि लज़्ज़ते-ज़िन्दगी मिलेगी।
यह क्या ख़बर थी बहारे-गुलशन लहूमें डूबी हुई मिलेगी॥

—अबुल मजाहिद 'ज़ाहिद'

ज़माना आया है हुर्रियतका[3], चमनमें हरसू[4] यही था चर्चा।
किसीको इसका गुमाँ नहीं था कि दुःखभरी जिन्दगी मिलेगी॥

—महमूद मुज़फ़्फ़रपुरी

जो मुल्कमें इन्क़लाब आया तो, क़त्लो-ग़ारतके साथ आया।
समझ रहे थे समझनेवाले कि इक नई ज़िन्दगी मिलेगी॥
उदासियोंने उजाड़ डाला कुछ इस तरह बाग़ आर्ज़ूका।
न ताज़ा दम इसमें गुल मिलेगा, न मुसकराती कली मिलेगी॥

—सरीर काबरी गयावी

हुई न थी जब नसीब क़ुरबत सुहाने कितने थे ख़्वाबे-उल्फ़त।
कि हुस्नकी हर अदामें रक़्साँ[5] नई-नई ज़िन्दगी मिलेगी।

—क़मर नअ़मानी

---

१. सुबह; २. नवजीवन; ३. आज़ादीका; ४. सर्वत्र; ५. नृत्य करती हुई।

किया था आज़ादि-ए-वतनका बड़ी मसर्रतसे ख़ैर मक़दम।
किसे था इसका यक़ीं कि अंजामेकार ग़ारतगरी मिलेगी॥
—नैय्यर

न था यह वहमो-गुमाँ भी 'साग़र' बहार आयेगी जब चमनमें।
तो पत्ता-पत्ता तड़प उठेगा, कली-कली शबनमी[1] मिलेगी॥
—साग़र अंसारी

बड़ी उम्मीदें, बहुत थे अरमाँ कि होंगे सैरे-चमनसे शादाँ।
बहार आई तो क्या ख़बर थी कि हमको आशुफ़्तगी[2] मिलेगी॥
—मफ़्तूँ कोटवी

वह दौर आया है जिसका इन्साँ, कभी तसव्वुर[3] न कर सका था।
किसे ख़बर थी कि एक दिन यूँ, बलामें दुनिया घिरी मिलेगी॥
—नुसरत करलोवी

ग़रीब साहिलसे[4] कोई पूछे जो हाल दरियाने कर दिया है।
करोगे मौजोंका जब नज़ारा मिज़ाजमें बरहमी मिलेगी॥
—मुनव्वर लखनवी

स्वराज्य-प्राप्तिसे पूर्व जनसाधारणका विश्वास था कि जीवनोपयोगी सभी आवश्यकीय वस्तु सुलभ और सस्ती हो जायेंगी। युद्धजनित अस्थायी मँहगाई विलीन हो जायगी।

काँग्रेसकी ओरसे जब नमक-जैसी सस्ती वस्तुपरसे टैक्स उठानेका आन्दोलन चलाया गया था, तब लोगोंकी आम धारणा बन गई थी कि टैक्सोंका अभिशाप समाप्त कर दिया जायगा। यह किसीको आभासतक

---

१. अश्रुपूर्ण; २. परेशानी; ३. कल्पना; ४. किनारेसे।

न हुआ कि नमकके अतिरिक्त सभी वस्तुओंपर कई-कई टैक्स लाद दिये जायेंगे। इनकमटैक्स, मृत्युटैक्स, सेल्सटैक्स, एक्साइज़ ड्यूटी आदि भिन्न-भिन्न टैक्स नित्य नये बढ़ते जायेंगे। रेलवे और पोस्टआफ़िसके किराये घटनेके बजाय बढ़ते चले जायेंगे।

ज़माना वाक़िफ़ न था कुछ इससे कि ऐसा क़हते-गरां[1] पड़ेगा।
जो चीज़ मिलती थी चार पैसोंको अशर्फ़ी पर वही मिलेगी॥
यह क्या ख़बर थी कि फ़ाक़ा मस्तीमें सत्रपोशी[2] भी होगी मुश्किल।
अमाकी[3] जब होंगी इल्तजायें[4] तो क़त्लो-ग़ारत गरी मिलेगी॥

—सरीर काबरी गयावी

बहारमें जानते थे साक़ी! न बाबे-मैख़ाना[5] बन्द होगा।
यह क्या ख़बर थी कि मैकशोंको शराब तिश्ना लबी[6] मिलेगी॥

—ज़ाबिर फ़तहपुरी

वही है फ़ाक़ोंकी जब्रसामानियोंसे इफ़रादकी हलाकत।
मेरा गुमाँ था ग़लत कि आज़ाद होके आसूदगी मिलेगी॥

—ख़लीक़ ईयोलवी

जनताके जब स्वराज्य सम्बन्धी स्वप्न भंग हुए तो वह उन नेताओंसे चिढ़ गई, जो लम्बे-लम्बे वायदे करते हुए और जनताके जज्बातको उभारते हुए थकते ही न थे।

कहाँ है अब वोह जो कह रहे थे कि "दौरे-आज़ादमें वतनको—
नये नजूमो-क़मर[7] मिलेंगे, नई-नई ज़िन्दगी मिलेगी॥"

—आरिफ़ बाँकोटी

---

१. भीषण अकाल; २. वस्त्राभावमें गुप्तांगोंका ढकना भी कठिन होगा; ३. सुख-शान्तिके लिए; ४. प्रार्थनाकी जायेंगी तो; ५. मधुशालाका द्वार; ६. प्यास बढ़ानेवाली; ७. नवीन नक्षत्र-चन्द्रमा।

स्वराज्यसे पूर्व लोगोंका विश्वास था कि परस्पर भेद-भाव नहीं रहेगा। हर भारतवासीको समान अधिकार होगा—

जो राज़[1] आज़ादि-ए-वतनमें निहाँ[2] था कौन उसको जानता था।
कि इक़ तरफ़ ख़्वाजगी[3] मिलेगी तो इक तरफ़ बन्दगी[4] मिलेगी॥
यही है जमहूरियतके[5] मानी तो फिर ग़ुलामीका क्या गिला है।
किसीको ग़म होगा और किसीको मसर्रते-दायमी[6] मिलेगी॥

—सरीर काबरी

शगुफ़्ता बर्गेहाय गुलकी[7] तहमें नौके-ख़ार[8] है।
ख़िज़ाँ[9] कहेंगे फिर किसे अगर यही बहार है॥

—जोश मलीहाबादी

वही बाक़ी है अब तक बन्दिशोंकी सिल्सिलाबन्दी।
क़दमबन्दी, ज़बाँबन्दी, नज़रबन्दी, सदाबन्दी॥
यह हुर्रीयत[10] कहाँ है, हुर्रियतकी है हवाबन्दी।
ग़ुलामी हो गई रुख़सत, मगर बाक़ी है पाबन्दी॥
गलेसे तौक़ उतारा पाँवमें ज़ंजीर पहना दी।
तो फिर मैं पूछता हूँ, क्या यही है दौरे-आज़ादी॥

—सीमाब अकबराबादी

फ़िज़ायें[11] सोच रही हैं कि इब्ने-आदमने[12]।
ख़िरद[13] गवाँके, जुनूँ आज़माके क्या पाया?
वही शिकस्ते-तमन्ना वही ग़मे-ऐय्याम।
निगारे-ज़ीस्तने[14] सब कुछ लुटाके क्या पाया॥

—साहिर लुधियानवी

---

१. भेद; २. निहित; ३. किन्हींको हुकूमत; ४. किन्हींको गुलामी; ५. प्रजातंत्रताके; ६. स्थाई खुशियाँ; ७. खिले हुए फूलोंकी तहोंमें; ८. काँटे छिपे हुए हैं; ९. पतझड़; १०. स्वतन्त्रता; ११. हवायें; १२. मानवपुत्रने, १३. बुद्धि खोके; १४. जीवन ऐश्वर्य्यने।

सहरका[1] मुज़दा[2] सुनानेवालो ! तुलूअ[3] बेशक सहर[4] हुई है ।
मगर वोह किस कामकी सहर जो चुरा ले कुटियाओंका उजेला ॥

—कैफ़ी

ख़्वाब ज़ख़्मी हैं उमंगोंके कलेजे छलनी
मेरे दामनमें हैं ज़ख़्मोंके दहकते हुए फूल
अपनी सदसाला तमन्नाओंका हासल है यही ?
तुमने फ़िरदौसके[5] बदलेमें जहन्नुम[6] लेकर
कह दिया हमसे "गुलिस्ताँमें बहार आई है"
किसके माथेसे ग़ुलामीकी सियाही छूटी ?
मेरे सीनेमें अभी दर्द है महक़ूमीका[7]
मादरे-हिन्दके चेहरेपै उदासी है वही

—सरदार जाफ़िरी

वही क़स्मपुरसी, वही बेहिसी आज भी क्यों है तारी ।
मुझे ऐसा महसूस होता है यह मेरी महनतका हासिल नहीं है ॥

—अख़्तरउलईमान

जमहूरियतका[8] नाम है जमहूरियत कहाँ ?
फ़ताइते-हक़ीक़ते[9]-उरियाँ[10] है आजकल ॥
काँटे किसीके हक़में किसीको गुलो-समर ।
क्या ख़ूब एहतमामे-गुलिस्ताँ[11] है आजकल ॥

—जिगर मुरादाबादी

सूरज चमका आज़ादीका लेकिन तारीकी[12] कम न हुई ।
पुर हौल अँधेरे ग़ुरबतके कुछ और भी बढ़ते जाते हैं ॥

—मंज़र सिद्दीक़ी

---

१. प्रातःकाल होनेका; २. शुभ सन्देश; ३. उदय; ४. सूर्य, सुबह; ५. स्वर्गके; ६. नरक; ७. ग़ुलामीका, आधीनताका; ८. प्रजातंत्रका ९. वास्तविकता; १०. नग्न; ११. चमनका प्रबन्ध; १२. अँधेरी ।

न जाने हमनशीं[1]! यह बदशगूनी रंग क्या लाये ?
कि गुलशनमें बहार आते ही शबनम[2] अश्क[3] बरसाये ॥
मुबारक सुबह हो लेकिन, चमनवालो ! यह ख़दशा[4] है ।
कि सूरजकी तमाज़तसे[5] कहीं गुलशन न जल जाये ॥

—नाज़िश परतापगढ़ी

स्वतन्त्रता रूपी दुलहन वरण करनेसे पूर्व काश उसे देख लिया होता—

यह इज़्तराब[6]! यह शौक़े-उरूसे-आज़ादी[7]!!
उठाके देख तो लेना था परद-ए-महमिल[8]॥

—हफ़ीज़ होश्यारपुरी

काश स्वतन्त्रता-दुलहनका अन्तरंग भी इतना ही मोहक होता, जितना कि उसका बाह्य आवरण था—

काश ऐ महमिलनशीं ! खुलता न यूँ तेरा भरम ।
हाय कितनी दिलनशीं थी परद-ए-महमिलकी बात ॥

—नाज़िश परतापगढ़ी

स्वतन्त्रता मिलनेके बाद जो सर्वत्र एक असंतोष-सा एक दमघोंटू धुआँ-सा फैला हुआ है, उसके कई कारण हैं—

१—बहुत-से ऐसे व्यक्ति जो स्वतन्त्रता-संग्राममें बरबाद हो गये, स्वतन्त्रता मिलनेपर भी उनकी वही शोचनीय स्थिति रही। किसीने उनके आँसू तक नहीं पूँछे। इन आँसुओंको वे शायद चुपचाप पी भी जाते, यदि उनके साथी उनके दुःख-शोकमें समवेदना प्रकट कर सकते, किन्तु

१. पड़ोसी; २. ओस; ३. आँसू; ४. भय, सन्देह, खटका; ५. प्रचण्ड धूपसे; ६. उत्सुकता; ७. स्वतन्त्रतारूपी दुलहनके वरण करनेका चाव; ८. महमिलका परदा ।

वे साथी इतने ऊँचे और महान् हो गये कि उन्हें इनके आँसुओंको पूँछनेका अवकाश ही नहीं मिला। उद्घाटन-समारोहों, भोजों, जुलूसों, व्याख्यान-सभाओं और अपने पदको सुरक्षित बनाये रखनेके प्रयत्नों आदिमें वे बेचारे इतने लीन और व्यस्त हो गये कि उन्हें यह खयाल तक न रहा कि स्वतन्त्रताकी खिलअ़त पहने हुए, जिन लाशोंपरसे हमारा जुलूस गुज़रा है, उनके परिवारोंकी सिसकियाँ थामना भी हमारा फ़र्ज़ है। वही सिसकियाँ आज सर्वत्र सुनाई दे रही हैं। काश उन्हें इतना आभास हुआ होता—

उठ भी सकती हैं दफ़अ़तन लाशें।
जिनपै मसनद बिछाये बैठे हैं॥

—कैफ़ी आज़मी

२—बहुत-से ऐसे व्यक्ति, जिनकी पसीनेकी एक भी बूँद स्वराज्यके लिए नहीं गिरी; अपितु स्वराज्य-आन्दोलनको कुचलनेमें कोई प्रयत्न शेष नहीं छोड़ा। वे मालामाल हो गये, ऊँचे-ऊँचे पदोंपर प्रतिष्ठित बने रहे और बहुत-से ऐसे व्यक्ति जो स्वतन्त्रतादेवीका प्रसाद पानेके सर्वथा अधिकारी थे, मुँह देखते रह गये। इन मुँह देखनेवालोंके हृदयोंसे भी कुछ इस तरहके उच्छ्वास निकलते रहते हैं—

क्या गुलिस्ताँ[1] है कि गुंचे तो हैं लबे-तिश्न-ओ-ज़र्द[2]।
ख़ार आसूद-ओ-शादाब[3] नज़र आते हैं॥

—जाँ निसार 'अख़्तर'

ऐसे ही उपेक्षितोंके हृदयोंसे ऐसे उद्गार भी प्रकट होते रहते हैं—

हरम हमींसे, हमींसे हैं, आज बुतख़ाने।
यह और बात है दुनिया हमें न पहचाने॥

—अज़ीज़ वारिसी

---

१. चमनकी व्यवस्था तो देखो; २. कलियाँ तो प्यासी और मुरझाई हुई हैं; ३. और काँटे प्रफुल्ल।

जो स्वार्थी जनताको दोनों हाथोंसे लूट रहे हैं, उन्हें देशके उजड़नेका क्या ग़म ?

ख़बर हो कारवाँको[1] मंज़िले-मक़सूदकी[2] क्योंकर ।
बजाये रहनुमाई[3] रहज़नी है[4] आम ऐ साक़ी !

—अदीब मालीगाँवी

३—स्वराज्यसे पूर्व जो सुख-स्वप्न देखा जा रहा था, वह स्वराज्य मिलनेपर भंग हो गया। वही मँहगाई, वही पुलिस-राज्य। देशकी स्थिति सँभलनेके बजाय उत्तरोत्तर बिगड़ती गई। रिश्वतखोरी, चोर-बाज़ारी, सिफ़ारिशोंकी लानत, लूटमार, डाकेज़नी, अपहरण, अव्यवस्था आदिकी बाढ़-सी आगई—

फ़िज़ा चमनकी कुछ ऐसी बदली, गुलो-समनका पता नहीं है।
जो दुश्मने-रहज़नी थे पहले, ख़ुद उनमें अब रहज़नी मिलेगी ॥
नई है मै और नये हैं साग़र, नई है बज़्म और नया है साक़ी।
मगर जो पहले थी मै-कशोंमें वोह आज भी तिश्नगी मिलेगी ॥

—नसीम भरतपुरी

ग़रीब जनताको स्वराज्यसे क्या मिला—

मगर इन दरख़्तोंके सायेमें ऐ दिल !
हज़ारों बरसके यह ठिठुरे-से पौदे।
यह हैं आज भी सर्द, बेजान, बेदम।
यह हैं आज भी, अपने सरको झुकाये ॥

—जज़्बी

---

१. यात्रीदलको; २. लक्ष्यपर पहुँचनेकी; ३. पथप्रदर्शकीके बजाय; ४. यात्रियोंको लूटा जा रहा है।

कौन कहता है कि स्वतंत्रतारूपी बहार नहीं आई ? आई और ज़रूर आई। हाँ, यह बात दूसरी है कि वह जन-साधारणकी कुटियाओंमें नहीं आई—

बहार आई, ज़रूर आई, पर अपनी बस्तीसे दूर आई।
वहाँ उगाये ज़मींने सब्ज़े, जहाँ कोई दीदावर[1] नहीं है॥

—शफ़ीक़ जौनपुरी

कुछ इस तरहसे बहार आई है कि बुझने लगे।
हवा-ए-लाला-ओ-गुलसे चराग़े-दीद-ए-दिल॥
रवाँ है क़ाफ़िला, बेदरा-ओ-बेमक़सूद।
जो दिल गिरफ़्ता हैं राही, तो रहनुमाँ ग़ाफ़िल॥

—हफ़ीज़ होश्यारपुरी

४—भारत-विभाजनके कारण जिन्हें अपने बसे-बसाये घर छोड़ने पड़े और स्वराज्यके बाद भी जिन्हें इधर-उधर भटकना पड़ा, उनकी हाय भी आकाशमें गूँज रही है—

वह फ़क़त आँसू नहीं, ऐ चश्मे-ज़ाहिर-बीन दोस्त !
अपनी पलकोंपै लिये बैठे हैं इक अफ़साना हम॥

—जगन्नाथ आज़ाद

५—वे मुस्लिम लीगी जो दिनमें सैकड़ों बार हाथ उठा-उठाकर पाकिस्तान बननेकी दुआएँ माँगते थे। किसी भी वजहसे वे पाकिस्तान न जा सके और भारतमें रहनेपर ग़ैर मुसलमानोंकी बहुसंख्याके कारण, पहिले जितनी अधिक न तो सरकारी नौकरियाँ हथिया पा रहे हैं और न मनमाने फ़िले ही उठा पा रहे हैं। यद्यपि वे अब भी भारतमें रहते हुए 'भारत मुर्दाबाद' और 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे लगाते रहते हैं, और

---

१. पारखी, देखनेवाला।

पंचमाँगी कार्य कर रहे हैं। फिर भी उनके मनमें पड़ोसी जातियोंको देख-देखकर जो ईर्ष्याकी भावना उठती रहती है। वह उनके लेखों, नज़्मों, ग़ज़लों आदिसे ध्वनित होती रहती हैं। यह लोग अपने देशमें रहते हुए भी अपनेको बेगाना समझते हैं।

६—वे साम्यवादी जो भारतीय होते हुए भी रूसको अपना माता-पिता समझते हैं। भारतीय प्रजातन्त्रके विरुद्ध गद्य-पद्य-द्वारा असन्तोष फैलाते रहते हैं। यहाँ तक कि १९४७ के प्रथम स्वतन्त्रताके उत्सवको देखकर वे यह कहनेका भी साहस कर बैठे—

यह जश्न[1], जश्ने-मसर्रत[2] नहीं, तमाशा है।
नये लिबासमें निकला है रहज़नीका[3] जुलूस॥

—साहिर लुधियानवी

राष्ट्र-पिताकी शहादत

सुरों-असुरोंने एक बार समुद्र-मन्थन किया तो अमृतके साथ विष भी निकला। उस विषको अकेले महादेवने पी लिया और अमृत औरोंके लिए छोड़ दिया। अर्द्धशतीतक निरंतर संघर्ष करनेके बाद भारतको भी स्वराज्यामृत और सम्प्रदायवाद-गरल प्राप्त हुए। भारत-वासियोंकी अनेक जन्म-जन्मान्तरोंकी तपश्चर्याके फलस्वरूप उनका महामानव (गान्धी) भी गरल पीनेको आगे बढ़ा। वह उन्हें विजयोत्सव मनाने और स्वच्छन्दतापूर्वक स्वराज्य-सेवन करनेको छोड़कर एकान्तमें बैठकर गरल पान-कर रहा था कि उसका यह गरल पान भी न देखा गया। अमृतको छोड़कर उस गरलपर पिल पड़े। जब गरल आसानीसे नहीं छीना जा सका तो वरदान पाये हुए राक्षसके समान हमने स्वयं अपने वर-दाता महामानवको मार डाला। विश्वकी इस दीप-ज्योतिके बुझनेसे बक़ौल अर्श मलसियानी—

---

१. उत्सव; २. खुशीका उत्सव नहीं; ३. लुटेरेपनका।

जमीने-हिन्द थर्राई, मचा कोहराम आलममें ।
कहा जिस दम जवाहरलालने "बापू नहीं हममें" ॥
फ़लक काँपा, सितारोंकी ज़ियामें[1] भी कमी आई ।
ज़माना रो उठा, दुनियाँकी आँखोंमें नमी आई ॥

राष्ट्रपिता बापूको विश्वभरने श्रद्धांजलियाँ समर्पित कीं । भारत और पाकिस्तानके उर्दू-शाइरोंने भी बहुत अधिक श्रद्धाके फूल चढ़ाये और चढ़ा रहे हैं । प्रसंगवश उनमें-से चन्द नज़्मोंके थोड़े-थोड़े अंश यहाँ दिये जा रहे हैं—

महात्मा गाँधी—

यह क्या हुआ कि अँधेरा-सा छा गया इकबार ।
उदास हो गई सड़कें उजड़ गये बाज़ार ॥
बढ़ा रही है उरूसाने-हिन्द[2] अपना सिंगार ।
ठहर गई है सरे-राह वक़्तकी रफ़्तार ॥
सकूते-शाममें[3] इकरंगे बेकसी[4] क्यों है ?
यह आज नब्ज़े-तमद्दुन[5] रुकी-रुकी क्यों है ?

....

ख़बर यह है कि हक़ीक़े-वफ़ाका[6] ख़ून हुआ ।
शहीद हो गई ग़ुरबत[7], हयाका ख़ून हुआ ॥

....

पुकारता है ज़माना दुहाई भारतकी ।
चितामें झोंक दी किसने कमाई भारतकी ?

....

१. चमकमें; २. भारतीय दुलहन; ३. संध्याकी शान्तिमें; ४. असहाय स्थिति; ५. सभ्यताकी नाड़ी; ६. नेकीके वास्तविक रूपका; ७. भोलेपनका बलिदान हो गया ।

यह किसके ख़ूनके धब्बे हैं आदमीयतपर ?
मुक़ामे-हैफ़[1] है ऐ हिन्द ! तेरी क़िस्मतपर ॥

....

है गुमरहीको[2] ख़ुशी यह कि रहनुमा[3] न रहा ।
भँवरमें आई जो किश्ती तो नाख़ुदा[4] न रहा ॥

....

लिया ख़िराज[5] अक़ीदतका[6] जिसने दुश्मनसे ।
मिलादी वक़्तकी रफ़्तार दिलकी धड़कनसे ॥

....

झुकादी गरदनें मग़रूर कजकुलाहोंकी[7] ।
झपक रही थी पलक जिससे बादशाहोंकी ॥

....

ग़रज़ कि आँखपै परदा जो था उठाके गया ।
दिलोंकी ईंटसे मन्दिर नया बनाके गया ॥

....

जो डूब जाता है सूरज तो रात होती है ।
ख़ता मुआफ़ हो शबनम[8] इसी पै रोती है ॥

....

यह क्या कि जेठमें जब प्यास तेज़ हो लबकी ।
तो सूख जाय उसी वक़्त जल भरी नदी ॥

....

चढ़े जो चाँद कभी लेके चाँदनी अपनी ।
तो उसकी फ़िक्रमें मँडलाये हर तरफ़ बदली ॥

—जमील मज़हरी एम० ए०

---

१. शर्मकी बात है; २. पथभ्रष्टताको; ३. पथप्रदर्शक; ४. नौका-खिवैया; ५. कर, टैक्स; ६. श्रद्धा विश्वासका; ७. अभिमानसे ऊँचा मस्तक रखनेवालोंकी; ८. ओस ।

महात्मा गाँधीका क़त्ल–

कुछ देरको नब्ज़े-आलम भी चलते-चलते रुक जाती है।
हर मुल्कका परचम[1] गिरता है, हर कौमको हिचकी आती है॥
तहज़ीबे-जहाँ[2] थर्राती है, तारीख़े-बशर[3] शरमाती है।
मौत अपने किये पर ख़ुद जैसे दिल ही दिलमें पछताती है॥
इन्साँ वोह उठा जिसका सानी सदियोंमें भी दुनिया जन न सकी।
मूरत वोह मिटी नक़्क़ाशसे[4] भी जो बनके दुबारा बन न सकी॥

....

हाथोंसे बुझाया ख़ुद अपने वोह शोल-ए-रूहे-पाक वतन[5]।
दाग़ इससे सियहतन कोई नहीं, दामन पर तेरे ऐ ख़ाके वतन!
पैग़ामे-अजल[6] लाई अपने उस सबसे बड़े मुहसिनके[7] लिए।
ऐ वाये-तुलूए-आज़ादी[8]! आज़ाद हुए इस दिनके लिए?

....

नाशाद वतन! अफ़सोस तेरी क़िस्मतका सितारा टूट गया।
उँगलीको पकड़कर चलते थे जिसकी, वही रहबर[9] छूट गया॥

....

सीनेमें जो दे काँटोंको भी जा, उस गुलकी लताफ़त क्या कहिए?
जो ज़हर पिये अमृत करके, उस लबकी हलावत[10] क्या कहिए?
जिस साँससे दुनिया जाँ पाये, उस साँसकी निकहत[11] क्या कहिए?
जिस मौतपै हस्ती नाज़ करे, उस मौतकी अज़मत[12] क्या कहिए?

---

१. झण्डा; २. विश्व-सभ्यता; ३. मानव इतिहास; ४. मूर्तिकारसे; ५. देशकी पवित्र आत्मारूपी आग; ६. मृत्यु-सन्देश; ७. हितैषीके; ८. हाय रे स्वतन्त्रताके सुनहरे प्रभात; ९. पथप्रदर्शक; १०. मिठास; ११. सुगन्ध; १२. महानता।

यह मौत न थी क़ुदरतने तेरे, सर पर रक्खा इक ताजे-हयात[1] ।
थी ज़ीस्त[2] तेरी मैराजे-वफ़ा[3], और मौत तेरी मैराजे-हयात[4] ॥

....

मख़लूक़े-ख़ुदाकी[5] बनके सिपर मैदाँमें दिलावर एक तू ही ।
ईमाँके पयम्बर आये बहुत, इन्साँका पयम्बर एक तू ही ॥

....

तू चुप है लेकिन सदियोंतक गूँजेगी सदाये-साज़ तेरी ।
दुनियाको अँधेरी रातोंमें ढारस देगी आवाज़ तेरी ॥

—आनन्दनारायण मुल्ला

महात्मा गाँधी—

ला ज़वाल एक टीस है सीनोंमें ग़म है मुस्तक़िल ।
भीगती जाती है आँखें, डूबते जाते हैं दिल ॥
जगमगाते देशकी बरबाद शोभा हो गई ।
नागहाँ कोई सुहागिन जैसे बेवा हो गई ॥
ज़िन्दगी देकर वतनको सबका प्यारा उठ गया ।
बेकसोंका, नेक लोगोंका, सहारा उठ गया ।
हाय यह क्या हो रहा है ? हाय यह क्या हो गया ।
हिन्दका बापू ज़मानेको जगाकर सो गया ?
सब्र भी आ जायगा, यह ज़ख़्म भी भर जायगा ।
हिन्द ऐसा देवता लेकिन कहाँसे लायगा ॥
ख़्वाब तकमें भी ख़याल इस बातका आता न था ।
शान्तीका देवता गोलीसे मारा जायगा ॥

---

१. अमर जीवनका ताज; २. ज़िन्दगी; ३. नेकीका लक्ष्य; ४. जीवनका लक्ष्य; ५. ईश्वरकी सृष्टिकी ।

पानी-पानी कर गई सबको यह ज़िल्लतनाक बात।
क्यों उठा ? किस तरह उट्ठा ? बापपर बेटेका हाथ ॥
इक उजाला था कि जिसके दमसे रोशन था यह घर।
क्या मिला पापीको सारे देशका सुख छीन कर ॥
ज़ुल्मतोंके ख़ौफ़से सूरज ठहर सकता नहीं ॥
मर गया पैग़ाम्बर पैग़ाम मर सकता नहीं ॥

—अर्दीब सहारनपुरी

नज़रे-गांधी—

६ बन्दोंमें से ४ बन्द

रो कि रोना मादरे-हिन्द ! आज तेरा है बजा।
रो कि तेरी गोदमें है तेरे बेटेकी चिता ॥
रो कि जमनाके किनारे भाग तेरा जल गया।
रो कि मिट्टीमें मिला जाता है फ़ख़रे-एशिया[1] ॥
इस तरह हो लरजाबरअन्दाज़[2] हो जाये जहाँ।
ज़लज़ला बरदोश[3] हो जायें ज़मीनो-आसमाँ ॥

....

ऐ हिमालय तू झुकाले अपना यह ताजे-सफ़ेद।
टेकदे अपनी जबीं[4] और चूमले पाये-शहीद[5] ॥
उठ रही हैं कुलज़मे ग़मसे तेरे मौजे शहीद।
नारवाँ होंगी अब उनपर ज़व्तकी मुहरें मज़ीद ॥

....

१. एशियाका अभिमान; २. तड़पकर क़यामतनरपा थर-थराहट पैदाकर; ३. प्रलय जैसे दृश्यसे; ४. मस्तक; ५. शहीदके चरण।

संगरेज़ोंके[१] जिगरका आख़िरी क़तरा लुटा ।
आँसुओंके सैलसे[२] इक दूसरी गंगा बहा ॥

....

ऐ ज़मीं ! ऐ आसमाँ ! ऐ चाँद तारो, आफ़ताब !
डाल लो आज अपने रुख़पर मातमी काली नक़ाब ॥
आँसुओंमें ढाल दो अपनी ज़ियाओंका शबाब !
ख़ूब रोलो भरके जी, है आज रोना ही सवाब ॥
नो-उरूसे-क़ौमियतका[३] लुट गया ताज़ा सुहाग ।
आज तौक़ीरे-वतनको[४] खागई ख़ूँख़्वार आग ॥

....

जिसकी पेशानीके बलसे सरनगूँ[५] शाही कुलाह[६] ।
जिसकी पाये-अज़्मपर[७] पाबोस[८] था ईवाने-माह[९] ॥
जिसकी अंगुश्ते-इशारे से थे अफ़रंगी तबाह ।
जिसके दामनमें सियासत-साज़[१०] लेते थे पनाह ॥
ऐ अजल[११] ! उस शै को छूनेसे तू घबराई नहीं ।
ऐसे इन्सांके क़रीब आते भी शरमाई नहीं ?

—अहमद अज़ीमाबादी

पैकरे-तहज़ीबे-इन्साँ—

१७ शेरमें से ४ शेर

वोह गान्धी जिसका सारे मुल्ककी गरदनपै एहसाँ था ।
वोह गान्धी, कारनामा जिसका आलममें नुमायाँ[१२] था ॥

---

१. पत्थर-हृदयका; २. बहावसे; ३. नवीन राष्ट्ररूपी दुल्हनका; ४. देशकी प्रतिष्ठाको; ५. नत; ६. शाहीताज; ७. दृढ़ चरणोंपर; ८. चूमता; ९. चन्द्रमा-महल; १०. राजनीतिज्ञ; ११. मृत्यु; १२. प्रकट ।

वोह गान्धी नींव डाली, जिसने आज़ादीकी भारतमें।
वोह गान्धी जो सिपहरे-सुलहका[1] महरे-दरख़्शां[2] था ॥
वोह गान्धी हिल गईं जिससे शहन्शाहीकी तामीरें[3]।
वोह गान्धी इज़्मो-इस्तक़लालका[4] जो मर्दे-मैदां था ॥
रवा रखता न था जो हाथ उठाना नौए-इन्साँ पर।
लगी गोली उसीके सीनए-आईने-सामाँ पर ॥

—सरीर काबरी मीनाई

नज़रे-अक़ीदत—

१५ शेरमेंसे तीन शेर

क्या बताऊँ दोस्तो! इक हम सफ़र जाता रहा।
राहमें बैठा हूँ मैं और राहबर जाता रहा ॥
जिसने की क़ौमो-वतनके वास्ते क़ुरबानियाँ।
अम्नो-आजादीका वोह पैग़म्बर जाता रहा ॥
जिसका ज़लवा आम था शाहो-गदाके[5] वास्ते।
वोह फ़क़ीरे-बेनवा[6], वोह ताजवर जाता रहा ॥

—सद्दीक़ कानपुरी

नज़रे-गाँधी—

१४ रुबाइयोंमेंसे ४

वोह मुल्कका रहनुमाँ[7], वोह बूढ़ा हादी[8]!
दी जिसने ग़ुलामीसे हमको आज़ादी ॥
छलनी हो उसीका गोलियोंसे सीना।
दिल नौहासरा[9] है, रूह है फ़रियादी ॥

---

१. शान्तिरूपी ढालका; २. चमकता हुआ चन्द्रमा; ३. नींवें, जड़ें; ४. दृढ़ता, धैर्यका; ५. बादशाह-फ़क़ीरके; ६. शान्त फ़क़ीर; ७. नेता; ८. पथ-प्रदर्शक; ९. शोकसंतत।

मीठे शब्दोंमें दिल लुभाता ही रहा।
हँस-हँसके बुराइयाँ जताता ही रहा॥
इस ख़न्दाबीनीकी[1] कोई हद भी है।
गोली खाकर भी मुसकराता ही रहा॥

इक ग़मने तेरे भुलवा दिये ग़म सारे।
हम भूल गये गुज़िश्ता[2] मातम सारे॥
यह क़त्लकी तेरे गूँज अल्लाह-अल्लाह।
झुकवा दिये इस जहांके परचम[3] सारे॥

पत्थर भी है इन्सानका दिल काँच भी है।
हाँ पापकी और पुनकी यहाँ जाँच भी है॥
सुनते थे कि दुनियामें नहीं साँचको आँच।
देखा यह मगर कि साँचको आँच भी है॥

—एजाज़ सिद्दीक़ी

तक़सीम—

ग़ारते-आमादा थी हर क़ौम और वे तञ्जीम थीं,
ख़ुदपरस्ती, ख़ुदसराने वक़्तकी तसलीम थी,
मुल्कका बटवारा हो, या इख़्तलाफ़ अक़वामका,
क़िस्मते-हिन्दोस्ताँ, तक़सीम ही तक़सीम थी,
मर्दे-दरवेश एक उट्ठा हाथमें लेकर असा,
ख़त्म करनेके लिए, यह सिल्सिला तक़सीमका
गूँज उठी अक़वाममें उसकी सलाये-इत्तहाद
हिल गये फ़ित्नोंके सीने, काँप उठी रूहे-फ़िसाद

१. हँसमुख स्वभावकी; २. भूतकालीन; ३. झण्डे।

उसने ललकारा कि नाक़िस है, यह जंगे-ज़रगरी
आदमीयतको हवाए-अम्न ही रास आयेगी
लाल-ओ-गुल, सब्ज़-ओ-सरूओ-समन सब एक हैं,
यह बसद रंगीनियाँ सद पैरहन सब एक हैं,

तुमको ऐ अहले वतन यकरंग होना चाहिए,
ज़र्फ़ वाले हो तो क्यों दिल तंग होना चाहिए,

लेकिन उसके मुल्कमें कुछ सिर फिरे ऐसे भी थे
हो गये सुनकर यह पागल थुड़ दिले ऐसे भी थे,
मिलके आज़ादीके पैग़म्बरको कर डाला हलाक
कुछ नफ़र इस मुल्के-नौ-आज़ादके ऐसे भी थे,
आह हिन्दोस्तान उसकी शानका महरम न था
उसका दर्जा, दर्जए-रूहानियतसे कम न था
हो अहिंसाका पुजारी यूँ तशद्दुदका शिकार
लानत ऐ फ़िरक़ा-परस्ती तुझपै लानत लाखबार
तेरी साज़िशसे हुआ यह हादसा सूरत गज़ी
रूहको उसकी मगर तू क़त्ल कर सकती नहीं
रूह उसकी है फ़िज़ामें तारी-ओ-सारी हनूज़
फ़ैज़ उसका और तालीम उसकी है जारी हनूज़
हो गया अहले वतनकी ग़म गुसारीमें शहीद
रोकनी थी उसको हिन्दुस्ताँकी तक़सीमे-मज़ीद

जुज़्वे हर दरिया हुआ हर-इक नदीमें बह गया,
हिन्दकी वुसअतमें ख़ुद तक़सीम होकर रह गया,

जुर्म यह था क़ौमको गुमराह क्यों कहता है, यह
मनचलोंको मुल्कका बदख़्वाह क्यों कहता है, यह,
क्यों सुना करता है, यह कुरआन इंजील और ग्रंथ
राम और भगवान्‌को अल्लाह क्यों कहता है यह,

था दमाग़ उसका हिमाला, बरहना सर उसका ताज
उसका दिल हरद्वार था, जिसमें था हरदम रामराज,

एक आँख उसकी थी जमना और गंगा दूसरी
और इन दोनोंका संगम उसकी क़ौमी ज़िन्दगी

एक हाथ उसका शिवालागीर, इक मस्जिद पनाह
थी नज़र गीतापर उसकी और क़ुरआँ पर निगाह

पाँव थे राहे-तलबके दो सलोने उस्तवार
कृष्णका सच्चा मुक़ल्लद और बुधकी यादगार
वोह जवाँ अज़मोजवाँ करदार मर्दे-पीर था
था न हिन्दुस्ताँ तो हिन्दुस्तानकी तसवीर था

—सीमाब अकबराबादी

प्रेरणात्मक शाइरी

भारत-विभाजन, साम्प्रदायिक-हत्याकाण्ड, और स्वतन्त्रताके मधुर स्वप्न भंग होनेके कारण सर्वत्र निराशा, निरुत्साह, असफलता, अकर्मण्यताकी घटायें छा गईं, किन्तु हमारे नौज़वान शाइरोंने एक पलको भी हिम्मत नहीं हारी। अपने प्रखर कलाम-द्वारा उन घटनाओंको अहर्निश छिन्न-भिन्न करनेमें लगे हुए हैं। वे आज इतने साहसी, पुरुषार्थी और स्वावलम्बी हो गये हैं कि उन्नति-मार्गमें बढ़नेके लिए ख़ुदाके. सहारेकी भी आवश्यकता नहीं समझते—

चमक ही जायगी तक़दीरे-कायनात[1] इक रोज़ ।
न हो ख़ुदाकी मदद, आदमीकी ज़ात तो है ॥
जो काँप-काँप-सी उठती है तीरह-तीरह[2] फ़िज़ा ।
पयामे-सुबह लिये ज़िन्दगीकी रात तो है ॥

—अज्ञात

बढ़ो कि रंगे-चमन बदल दें, चलो-चलो हिम्मत आज़मायें ।
जुनूंकी[3] लौ और तेज़ करदो, फ़सुर्दा[4] शमओंको फिर जलायें ॥

—अज्ञात

अपने देशको छोड़कर जानेवाले महाजरीनको 'नज़ीर' बनारसी सचेत करते हुए कहते हैं—

वतनको तू छोड़ दे मगर क्या, ग़मे-वतन तुझको छोड़ देगा ।
यहाँ तड़पती हैं आज लाशें, यहींपै कल ज़िन्दगी मिलेगी ॥
तेरी ग़रीबीका क्या मुदावा[5] कि तू है एहसासका[6] सताया ।
रहा अगर तेरा ज़हन[7] मुफ़लिस,[8] तो हर जगह मुफ़लिसी मिलेगी ॥

दुःखमें ही सुख छिपा रहता है—

गिरेगी जब आसमाँसे बिजली तो जल उठेगा चराग़े-ख़िरमन[9] ।
फुरेरा जब मौतका खुलेगा, तो दौलते-ज़िन्दगी मिलेगी ।

—जोश मलीहाबादी

इन्हीं मसाइबकी[10] गोदमें पल रही हैं 'नाज़िश' मसर्रतें[11] भी ।
इसी जहन्नुम कदेसे[12] इक रोज़ राह फ़िरदौसकी[13] मिलेगी ॥

—नाज़िश परतापगढ़ी

१. संसारका भाग्य; २. अँधेरा-स्याह वायुमण्डल; ३. उन्मादकी, जोशकी; ४. बुझे हुए दीपोंको; ५. उपाय, इलाज; ६. हीनताके भावका; ७. चेतना शक्ति, मन; ८. दरिद्र; ९. खलिहानका दीपक; १०. आपदाओंकी; ११. खुशियाँ; १२. नरकसे; १३. स्वर्गकी ।

आपदाओंसे घबराना इन्सानकी शानके ख़िलाफ़ है। मगर आजके इन्सानको न जाने यह क्या हो गया है—

ज़रा-सी ख़ातिर शिकस्तगीकी, नहीं है बर्दाश्त आदमीको।
कलीको वक़्ते-शिकस्त देखो तो मुसकराती हुई मिलेगी॥

—सीमाब अकबराबादी

क़दम तो रख मंज़िले-वफ़ामें बिसात खोई हुई मिलेगी।
वहीं-कहीं नक़्शे-पाकी सूरत[1] पड़ी हुई जिन्दगी मिलेगी॥

है जौरे-सैयाद ही का सत्क़ा चमनकी हंगामा आफ़रीनी।
तबाहियाँ जिस जगहपै होंगी वहीं-कहीं ज़िन्दगी मिलेगी॥

—सिराज लखनवी

बदीको परखो मिलेगी नेकी, जो ग़मको समझो ख़ुशी मिलेगी।
जहाँ-जहाँ है घना अँधेरा, वहीं-वहीं रोशनी मिलेगी॥
यह ना उमेदी यह बेयक़ीनी, यक़ीनो-उम्मीदकी झलक है।
इन्हीं अँधेरोंको पार करके यक़ीनकी रोशनी मिलेगी॥

—साग़र निज़ामी

क़दम बढ़ाओ खिज़ां नसीबो! वोह मंज़िलें मुन्तज़िर हैं अपनी।
जहाँ पहुँचकर निगाहो-दिलको, बहारकी ताज़गी मिलेगी॥

—नरेशकुमार 'शाद'

शिकस्ता दिल हो न मेरे माली! वोह दिन भी नज़दीक आ रहा है।
कि फूल खिलते हुए मिलेंगे, फ़िज़ा महकती हुई मिलेगी॥

—शफ़ीक़ जौनपुरी

---

१. चरण-चिह्नोंकी तरह।

जो क़ैदो-बन्दे चमनसे घबराके आशियानेको छोड़ देगा।
करेगा जिस शाख़पर बसेरा, वही लचकती हुई मिलेगी॥
पुराने तिनकोंमें आँधियोंके मुक़ाबिलेकी सकत नहीं है।
उजड़ भी जाने दे आशियाना कि फिर नई ज़िन्दगी मिलेगी॥

—निसार इटावी

कभी तो इस ज़िन्दगी-ए-मुर्दापै रंग आयेगा ज़िन्दगीका।
कभी तो बदलेंगे दिल हमारे, कभी तो हमको ख़ुशी मिलेगी॥

—अर्श मलसियानी

अँधेरी रातोंमें रोनेवालोंसे कह रही है शफ़क़की सुर्ख़ी[1]।
न अब बहाओ कोई भी आँसू, तुम्हें नई रोशनी मिलेगी॥

—जमनादास 'अख़्तर'

हज़ार ज़ुल्मत हो, कारवाने-सहरकी[2] आमद न रुक सकेगी।
इन्हीं अँधेरोंमें बज़्मेगेतीको[3] एक दिन रोशनी मिलेगी॥

—गोपाल मित्तल

हज़ार नाकामियाँ हों 'नश्तर' हज़ार गुमराहियाँ हों लेकिन—
तलाशे-मंज़िल अगर है दिलसे तो एक दिन लाज़िमी मिलेगी॥

—हरगोविन्ददयाल 'नश्तर'

अभी तो महवे-सितम हो लेकिन, वोह दिन भी आयेगा इक न इक दिन।
जफ़ाकी आँखोंमें होंगे आँसू, वफ़ाके लबपर हँसी मिलेगी॥

—अकरम धौलपुरी

---

१. संध्याकालीन सूर्यकी लाली; २. प्रातःकालरूपी यात्रीदलकी; ३. अँधेरे संसारको।

नवयुवकोंकी प्रेरणात्मक शाइरीका उल्लेख कहाँ तक किया जाय, अहर्निश इसीमें जीवन खपा रहे हैं और इसमें आश्चर्यकी कोई बात भी नहीं है। यह उम्र ही ऐसी है कि वे पिये नशा बना रहता है और असम्भव कार्य भी सम्भव कर डालती है, परन्तु जब हम 'असर' लखनवी-जैसे ७० वर्षीय वयोवृद्धकी यह ललकार सुनते हैं तो मन आशासे सचमुच ओत-प्रोत हो जाता है—

> माना नसीब सो गये बेदार तुम तो हो।
> सोते हुए नसीब जगाते चले-चलो॥
> काँटोंको रौन्दते हुए शोलोंसे खेलते।
> हर-हर क़दमपै धूम मचाते चले-चलो॥
> बुझते हुए चराग़ भी हैं कामके 'असर'!
> शमएँ नई उन्हींसे जलाते चले-चलो॥

इस दौरके शाइरोंने प्रायः सभी आवश्यकीय एवं सामयिक विषयोंको नज़्म किया है। विश्वमें घटनेवाली मुख्य-मुख्य घटनाओंसे और विश्व-साहित्यसे उर्दू-शाइर असर क़ुबूल करते रहे हैं। वे कूपमण्डूक न रहकर विस्तृत क्षेत्रमें उड़ान भरने लगे हैं। यही कारण है कि उर्दू-शाइरी उत्तरोत्तर सम्पन्न होती जा रही है।

इस तरहकी इन्क़लाबी, प्रगतिशील और नवीन शाइरीका विस्तृत विवेचन, क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत पुस्तक 'शाइरीके नये मोड़'में कई भागोंमें समाप्त होगा। इस परिच्छेदमें प्रसंगानुसार संकेत मात्र हुआ है?

१४ मार्च १९५८ ई०]

●

---

१. यह अंश शेरो-सुख़नके चौथे भागके प्रथम संस्करणमें छापा था। द्वितीय संस्करणमें वहाँसे निकाल कर अब प्रस्तुत पुस्तकमें पुनः संशोधित परिवर्द्धित करके दिया जा रहा है।

नवीन धारा
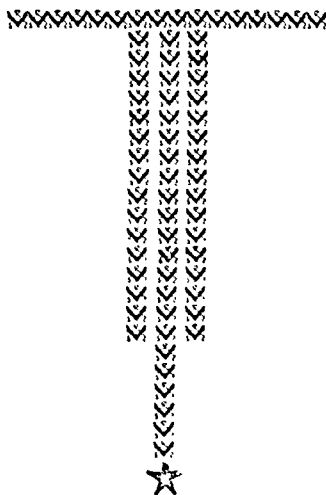
नई लहरमें जिन घटनाओंका संक्षिप्त उल्लेख हुआ है
उनकी कुछ झाँकी इन शीर्षकोंमें मिलेगी—

१ नरमेध-यज्ञ

२ जनता-राज

३ देश-प्रेम

४ नवीन चेतना

प्रो० 'शोर' अलीग–

दुनिया

[साम्प्रदायिक हत्याकाण्डकी भविष्यवाणी]

ख़ून इतना बहायगी दुनिया
ख़ूनमें डूब जायगी दुनिया
गुदड़ियोंमें सुलग रही है जो आग
मसनदोंमें लगायेगी दुनिया
ग़ुस्ले-सेहतके वास्ते इकबार
फिर लहूमें नहायेगी दुनिया
जिनकी लौसे चमन धुआँ देंगे
फूल ऐसे खिलायेगी दुनिया
साजे-तहज़ीबे-नौके-तारों पर
ख़ूँ चुका गीत गायेगी दुनिया
जिनको तरसी हैं किश्तियाँ सदियों
अब वोह तूफ़ाँ उठायेगी दुनिया
इक तरफ़ रोयेगी लहू फ़ितरत
इक तरफ़ मुसकरायगी दुनिया
ताज़े-क़ैसर असाये-सुल्तानी
ठोकरोंमें उड़ायेगी दुनिया
रोते-रोते हँसा चुके हम दम
हँसते-हँसते रुलायेगी दुनिया

हमारे देश आने को।

देख वोह नब्ज़ सरवरी छूटी
वोह किरन इन्क़लाबकी फूटी

—आजकल १५ जुलाई १९४६

क़ब्रोंकी चीख़

सुना है आतिशो-ख़ूँमें नहा चुकी दुनिया
ज़मींके तौक़ो-सलासल गला चुकी दुनिया
अगर यह सच है, कि मुर्दे उग़ल चुके मदफ़न
अगर यह सच है शहीदोंके बिक चुके हैं कफ़न
अगर यह सच है कि बच्चे चबा चुका है वतन
अगर बरहना है अब भी बनाते गङ्गो-जमन

....

तो ज़लज़लोंका अभी इन्तज़ार बाक़ी है
चमन पै बारिशे-बर्क़ो-शरार बाक़ी है

—निगार नवम्बर १९४५

ख़ल्लाके-कायनातसे

बुझती हुई दुकानें, सुलगते हुए बाज़ार
फ़सलें भी धुआँधार हैं, ख़िरमन भी धुआँधार
हँसते हुए लब, ज़हर उगलते हुए सीने
तूफ़ाँके तराशीदा किनारों पै सफ़ीने

—निगार मई १९४६

सीमाब अकबरावादी—

ऐ वाये वतन वाये !

....

आज़ाद ग़ुलामोंसे फ़ज़ा खेल रही है,—बाज़ी यह नई है,
पर्देमें तास्सुबके फ़ना खेल रही है,—तूफ़ाने-ख़ुदी है,
तसवीर जहन्नुमकी है, फ़िरदौसे कुहन वाये, ऐ वाये वतन वाये,
है दामने-मग़रबपै र वाँ ख़ूनके दरिया—देखा नहीं जाता,
मशरिक़में फिर उठनेको है सोया हुआ फ़ितना—आसार हैं पैदा
महफ़ूज़ नहीं आबरूए-गङ्गो-जमुन वाये—ऐ वाये वतन वाये

....

लाशोंसे गुलिस्ताने-वतन पाट रहे हैं, जज़्बे यह नये हैं,
आपसमें ही सब अपना गला काट रहे हैं, दीवाने हुए हैं,
अँरज़ा है, अजल वे मददे दारो-रसन वाये, ऐ वाये वतन वाये,

—शाइर अगस्त १९४७

मोहनसिंह दीवाना—

क़फ़स

अल्लाह, लड़ रहे हैं, क़फ़समें दो मुर्ग़ज़ार
क़स्सामे-आबो-दाना क्या चुपके-से कह गये ?

घर कर गई है, आह, ग़ुलामी कुछ इस क़दर
आज़ादियोंके ख़्वाब भी आने-से रह गये
क्या अपने चार तिनकोंका अफ़सोस कीजिए
तूफ़ाँ वह था कि जिसमें बहुत क़स्र ढह गये

हम क्या कहें कि हिज्रमें कटती है किस तरह
जी हलका हो गया ज्यूँ ही दो आँसू बह गये
तसलीम दोस्ती थी यह कुछ बुज़दिली न थी
क़हरे-ख़ुदा समझके तेरा ज़ुल्म सह गये

—आजकल, १ जून १९४६

अफ़सर अहमदनगरी—

नज़्म

धुन्धलके यासके छाये हुए हैं,
दिलोंके फूल कुम्हलाये हुए हैं,
महो-ख़ुरशीदका क्या ज़िक्र 'अफ़सर'
सितारे भी तो गहनाये हुए हैं,

—शाइर जुलाई १९४७

निसार इटावी—

ऐ वतनके पासबानो होशयार !
जान खतरेमें है, दिल ख़तरेमें है,
इर्तबाते[1]-आबो-गुल ख़तरेमें है,
आदमीयत मुस्तक़िल ख़तरेमें है,
ज़िन्दगानी है, सरापा इन्तशार[2]
ऐ वतनके पासबानो होशयार

....

दीन लुटनेको, धरम लुटनेको है,
हुरमते-दैरो-हरम लुटनेको है,
अंजुमनका कैफ़ो-कम[3] लुटनेको है,

१. मेल मिलाप; २. परेशान, घृणित; ३. कैसा और कितना।

लुटने वाला है मुहब्बतका वक़ार
अंजुमनके पासबानो होशयार

हाय यह इन्सानियतका इरतक़ा[1]
बतने-औरत[2], भेड़िये जनने लगा
आदमी हैवाँसे बाज़ी ले गया
बन गया मैदाने-आलम कार ज़ार,
ऐ वतनके पासबानो होशयार,

....

—शाइर मार्च १९४७

तुर्फ़ा कुरैशी—

आलमे-नौ

यह कश्तो-ख़ूँका आलम, यह हविसकी गर्म बाज़ारी,
यह आतिशरेज़ तैय्यारे, यह तोपें और बमबारी,

....

यह हिन्दुस्ताँ जहाँ तक़दीर भी करवट बदलती है,
यह हिन्दुस्ताँ जहाँकी सरज़मीं सोना उगलती है,
यहाँ और नाव काग़ज़की चले अल्लहरे महरूमी,
यहाँ और ज़ुल्मकी टहनी फले ऐ वाये महकूमी ?

—शाइर जनवरी १९४८

---

१. आचरण; २. औरत का जिस्म ।

रमज़ी इटावी—

मादरे-हिन्दका ख़िताब फ़रज़न्दाने-हिन्दसे

७६ शेरमें-से १६ शेर

किस क़दर हैरान हूँ ख़ूँबाज़ मंज़र देखकर
हाथमें बेटोंके अपने तेग़ो-ख़ंजर देखकर

दूर तक लाशें पड़ी सड़ती हैं बेगोरो-कफ़न
खा रहे हैं जिनको कुत्ते, भेड़िये, ज़ाग़ो-ज़गन

तिफ़्लकी मासूम चीख़ें ग़मज़दा माँकी पुकार
वह इधर दम दे रहा है, वह उधर है बेक़रार

ख़ुश्को-ताज़ा हड्डियोंका चारसू अम्बार है,
शहर क्या है, देख आदम-ख़ोरका इक ग़ार है,

सर पटककर रो रहा है बेकसीका कारवाँ
सिसकियाँ लेता है, कोई और कोई हिचकियाँ

उठ रहा है झोपड़ोंसे तेज़ शोलोंका धुआँ
गाँव क्या है, आगसे लबरेज़ दोज़ख़का कुआँ

ख़ून आलूदा खड़ी हैं, जंगलोंमें गाड़ियाँ
नज़रे-आतिश हो चुकी हैं, बस्तियोंकी बस्तियाँ

ज़ख़्मियोंका सुर्ख़ जंगल चलता-फिरता नौहाज़ार
वादिये - मज़लूमियतमें मुब्तलाए - ख़ूँफ़िशार

ग़मके ज़िन्दा क़ाफ़िले मज़लूमियतकी टोलियाँ
अजनबी शक्लें हैं जिनकी अजनबी हैं बोलियाँ

हवाए-ख़्वाहिशो-तूफ़ाने-एहसासातमें[1] तनहा
ग़मे-आशिक़में[2] गुम डूबी हुई जज़्बातमें[3] तनहा
किसी महबूबसे[4] मिलनेको आधीरातमें तनहा
कोई महवश[5] जवानीकी भरी बरसातमें तनहा
कभी आकर जलाती है, दिया नद्दीके पार अब भी?

....

चमनसे, चाँदनीसे, चाँदसे, बाग़ोंसे लालोंसे
घटासे, दश्तसे[6], कोहसारसे[7], चश्मोंसे[8], नालोंसे
बुताने-वादी-ओ-सहरासे[9], बस्तीके ग़ज़ालोंसे[10]
कोई ऐ काश कह देता वतनके रहनेवालोंसे
कि तुमको याद करता है, शमीमे-बे-दयार[11] अब भी

....

'सबा' मथरावी—

तक़सीमे-चमन

बढ गये बेला-चमेली, मोतिया, नरगिस, गुलाब
जो नज़रमें ख़ार थे वह ख़ार बनके रह गये
हो गया हर-हर रविश, हर-हर शजरका इन्तख़ाब
ख़ुश्क पत्ते हसरते-दीदार बनकर रह गये

---

१. भावनाओंके तूफ़ानों और अभिलापाओंकी हवाओंमें; २. प्रेमीके वियोगमें दुःखी; ३. भावना-नदीमें ४. प्रेमीसे; ५. प्रेयसी; ६. मार्गसे; ७. पर्वतसे; ८. झरनोंसे; ९. घाटियों और जंगलोंकी सुन्दरियोंसे; १०. शहरोंकी मृगनयनियोंसे; ११. बेवतन, बेघर।

बट गया सहने-गुलिस्ताँ, आशियाने बट गये
बाग़बाँ देखा किया, वे आशियानोंका मआल
हर तरफ़ औराक़े-गुलशनके फ़साने बट गये
रह गये बे-सख़्त टुकड़े बनकर इक लाहल सवाल

दामने-गुलचीं भी पुर था, बाग़बाँका कुंज भी,
थी मगर दोनोंके दिलमें, सिर्फ़ थोड़ी-सी खटक,
ख़ुश्क पत्ते और काँटे झाड़नेकी फ़िक्र थी,
बस रही थी ज़हनमें, रंगीन फूलोंकी महक,

दफ़अतन अँगड़ाइयाँ लेती हुई आँधी उठी
मशरिक़ो-मग़रिबमें गुलशनके अँधेरा छा गया
पेड़ टूटे, आशियाँ उजड़े, क़यामत आ गई
बाग़बाँ थर्रा गया गुलचीं भी ठोकर खा गया,

मंज़िलत पर कुछ लुटे, कुछ राहमें मारे गये,
बारे-गुलशन हो गये जो थे कभी जाने-चमन
दीद कलियोंकी गई, फूलोंके नज़्ज़ारे गये
लुट गई शाख़े-नशेमन मिट गई शाने-चमन

—शाइर दिसम्बर, १९४७

'निसार' इटावी—

मुस्लिम लीगियोंको यहाँ छोड़कर जब जिन्ना कराँची चले गये—

राहे तलबमें राहबर छोड़ गया कहाँ मुझे ?
अब है, न मौतकी उमीद और न ज़िन्दगीकी आस

—शाइर दिसम्बर १९४७

'फ़जा' इब्न फ़ैज़ी—

अहरमनज़ार[1]

....

रीगज़ारोंमें बर्क़के तोदे[2] ?
मर्ग़ज़ारोंमें आगके ख़ेमे[3] ?
आफ़ताबोंमें ज़ुल्मतोंके ग़िलाफ़[4] ?
सीनये-ऐशमें ग़मोंके शिग़ाफ़[5] ?

....

ग़मकी परछाइयाँ तबस्सुममें[6]
ज़ुल्मतें ख़्वाबगाहे-अंजुममें[7]
फूलकी ख़िल्वतोंमें बादे-समूम[8]

आशियानोंमें अन्दलीबके बूम[9]
हाथमें जुहलके ख़िरदकी अना[10]
बर्फ़ज़ारोंमें क़ैद बर्क़े-तपाँ[11]
नग़मे-मजरूह[12] साज़ोदफ़ ज़ख़्मी[13]
सोज़े-दिल न रूहमें गरमी[14]

---

१. शैतानों; २. बालूके कणोंमें बिजलियाँ; ३. क़ब्रिस्तानोंमें आगके डेरे; ४. सूरजों पर अन्धेरोंके खोल; ५. सुखी दिलों पर दुःखोंकी दरार; ६. मुसकानमें दुःखोंकी छाया; ७. नक्षत्रोंके शयनागारमें अँधेरे; ८. फूलोंके महलोंमें गरम हवाएँ; ९. बुलबुलोंके घोंसलोंमें उल्लू; १०. मूर्खताके हाथोंमें बुद्धिकी बागडोर; ११. बर्फ़ोंमें कौंदती बिजली क़ैद; १२. संगीत घायल; १३. वाद्य और ढफ़ ज़ख्मी; १४. न दिलमें तड़प न आत्मामें जोश ।

यह लहू चाटते हुए शोले[1]
गिरती बिजली बरसते अँगारे
क़ौमके सरपै नकबतोंके[2] ताज
इल्मकी[3] पस्ती, जिस्मकी मैराज[4]

ताक़ो-महराब ख़ूनसे लबरेज़
यादगारे – हलाकुओ – चंगेज़
ज़हर तिरयाक़के सेबचोंमें
मौत इन्सानियतके कूचोंमें

भेसमें आदमीके चौपाये
यह हलाक़तके रेंगते साये
ज़हन सदियोंकी वहशतोंका मज़ार
मुर्दा-मुर्दा ज़हनकी झंकार

ख़ूँ उगलते हुए बुलन्दो-पस्त
नेश्तर[5] कितने रूहमें पेवस्त
आदमी शैतनतके ज़ीनोंपर[6]
इस्मतोंका लहू जबीनोंपर[7]

भेड़िये मुअ़तकफ़ मसाजिदमें[8]
ख़ूनकी होलियाँ मुआबदमें[9]

---

१. चिनगारियाँ; २. ज़िल्लतों, दरिद्रताओंके; ३. बुद्धवादकी हीनता; ४. आधिभौतिकताका आदर्श; ५. नश्तर; ६. शैतानियतकी सीढ़ीपर; ७. शीलका रक्त माथोंपर; ८. मस्जिदमें भेड़िये एकान्तवासी हों; ६. नमाज़ियोंसे ख़ूनकी होली खेली जाये।

तेज़ संगीन नर्म सीनोंपर
ज़र्द चट्टानोंकी आबगीनोंपर[1]
ज़िन्दगीकी अब सहर[2] क्या हो,
खागई तीरगी[3] उजालोंको
इस ख़राबेमें ज़िन्दगानीके
शोव्दागहमें दहरे-फ़ानीके
आदमीकी तलाश है मुझको

—निगार मार्च १९५१

'नाज़िश' परतापगढ़ी—

बुत-तराश

२२ मेंसे १३ शेर

यह किन रगोंसे बनाये गये हैं, साज़ेतरब
यह किसके कास-ए-सरसे बने हैं, जामो-सुबू
हरेक ऊँचे महलपर बरस रही हैं बहार
मगर यह किसका पसीना है, और किसका लहू ?

यह ज़र्रे जिनको कोई पूछता न था कल तक
हमारे ख़ूनके बल पर बने महे—कामिल
हमींको भूल गये हैं, वह कारवाँ वाले
हमारी लाशपर चलकर जो पागये मंज़िल

बिठाके दोशपै जिनको निकाला पस्तीसे
पहुँचके अर्शपै वह लोग हमको भूल गये
हमारे रहनुमाँ कितने ख़ुदग़रज़ निकले
मिला जो ऐश तो चाराने-ग़मको भूल गये

---

१. शीशे चट्टानोंसे टकराये जायें; २. सुबह; ३. अँधेरी।

मग़र नदीम ! सलामत है अपना जोशे-जुनूँ
बुलन्दियोंके सितारोंको नोच सकते हैं,
नहीं है, काल हमारे लहूकी गरमीका
महलके ऊँचे मिनारोंको नोच सकते हैं,

हमारे हक़में वही आज बन गये क़ातिल
हमारी हुस्ने-नज़रने जिन्हें सँवारा था
हुए हैं, आज वह इसनाम हमसे बेगाना
जिन्हें चटानोंसे हमने कभी उभारा था

नदीम चाहें अगर हम तो अपने क़ातिलसे
नज़रको फेरलें और ख़ाक़ हो यह हुस्ने-तमाम
वही है तैश, वही हम, वही चट्टाने हैं,
उभार सकते हैं, लमहोंमें अनगिनत असनाम

—शाइर जून १९५१

'अफ़सर' सीमाबी—

ज़िन्दगीकी राहें

सावनमें भी है यह ख़ुश्क साली
इक बूँदको दिल तरस रहा है,
पानीके बजाय आसमाँसे
इन्सोंका लहू बरस रहा है,

—शाइर जनवरी १९४२

साक़ी जावेद बी० ए०—

दोस्त

हल्क़ए-एहबाबमें[1] हैं, भेड़िये और नाग भी
लाला-ओ-गुल भी हैं, गुलशनमें दहकती आग भी
हमरहाने-शौक़ कुछ मासूम, कुछ चालाक हैं,
यानी कुछ ईसानफ़स[2] हैं, और कुछ ज़ह्हाक[3] हैं
एक ही जादहपै[4] हैं ज़रदार[5] भी दहक़ाँ[6] भी आज
एक ही मंज़िल पै हैं इब्लीस[7] भी इन्साँ भी आज
चढ़ रहा है, आज हर पीतलपै इक चाँदीका खोल
अल्लाह-अल्लाह कंकरोंके साथ यह हीरोंका तोल
यह तख़ातुबकी[8] सजावट, यह तकल्लुमका[9] सिंगार
सादगीके हल्क़पर आदाबके ख़ंजरकी धार
आह यह लहजोंका मरहम, आह यह लफ़्ज़ोंके घाव
हर क़दम पर इक गुलिस्ताँ, हर क़दम पर इक अलाव[10]
क़ुदसियोंकी अंजुमनमें[11] अहरमनज़ादे[12] भी हैं
नूरकी वादीमें लाखों आगके जादे[13] भी हैं
साग़रे ज़म-ज़ममें भर कर ज़हर भी देता है, वक़्त
एक ही शीशेसे दोनों काम अब लेता है, वक़्त

—निगार सितम्बर १९५२

---

१. इष्ट-मित्रोंमें; २. ईसाकी तरह भद्र; ३. ईरानके एक ज़ालिम बादशाहका नाम, रिवायत है कि उसके दोनों मोंढों पर दो साँप पैदा हो गये थे, उनकी ख़ूराक आदमियोंका मस्तिष्क था; ४. जगह; ५. धनी; ६. किसान; ७. शैतान; ८. वैमनस्यको; ९. वार्त्तालापका; १० आगका ढेर; ११. देवताओंकी सभामें; १२. अधार्मिकोंकी सन्तान; १३. पगडंडियाँ।

शफ़ीक़ जौनपुरी—

ग़ज़ल

तामीरे-चमनके नामसे अब, तख़रीबे-गुलिस्ताँ होती हैं,
अन्धेर तो देखो बादे-ख़िज़ाँ गुलशनकी निगहबाँ होती हैं,

क्या वक्त है, रंगीनी भी चमनके ज़ख़्मका उनवाँ होती है,
हर फूलकी सुर्ख़ी जैसे नज़रमें ख़ूने-शहीदाँ होती है,

शबनमके तो क्या आँसू पूछें, अपना ही गरेबाँ चाक करें
मालूम नहीं फूलोंकी हँसी किस दर्दका दरमाँ होती है,

हम वादिए-ग़ुरबत वालोंको उम्मीदे-रफ़ाक़त क्या होगी ?
ऐ अहले-चमन ! जब निकहते-गुल तुमसे भी गुरेज़ाँ होती है

तमहीदे-तसादुम हो न कहीं साक़ी ! यह खनक पैमानोंकी
मौजोंमें तलातुम होता है, जब आमदे-तूफ़ाँ होती है,

गुलज़ारमें कल जिसका नग़मा पैग़ामे-मसर्रत बनता था,
इस वक्त उसी तायरकी सदा फ़रियादे-ग़रीबाँ होती है,

ऐ अहले-हरम जो करती है, पर्देको जलानेकी कोशिश
देखा है, वही बिजली अक्सर काबेकी निगहबाँ होती है,

ऐ चर्ख़ ! तेरे सूरजकी ख़ुशामदका वह ज़माना ख़त्म हुआ।
अब ख़ाक नशीनोंकी बस्ती ख़ुरशीद बदामाँ होती है,

—शाइर जुलाई १९५१

'तुर्फ़ा' .कुरेशी–

आलमे-नौ

२४ शेरमें-से ६ शेर

यह कश्तो-.खूँका आलम, यह हविसकी गर्म बाज़ारी
यह आतिशरेज़ तैयारे, यह तोपें और बमबारी
यह .जुल्म आराइयाँ, यह जौरो-इस्तबदादका आलम
ब-इबनाए-वतनकी ग़म असर फ़रियादका आलम
यह क़हरो-जब्र, यह .जुल्म आफ़रीनो यह शररबारी
यह हंगामे कयामतके यह शोले, यह तबहकारी

....

यह हिन्दोस्ताँ जहाँ गौतम, जनक, दशरथ हुए पैदा
यह हिन्दोस्ताँ जहाँकी ख़ाकसे राजा अशोक उट्ठा

....

यह हिन्दोस्ताँ जहाँ तक़दीर भी करवट बदलती है,
यह हिन्दोस्ताँ जहाँकी सरज़मी सोना उगलती है
यहाँ और नाव काग़ज़की चले अल्लाहरे महकूमी
यहाँ और .जुल्मकी टहनी फले ऐ वाये महकूमी

—शाइर जनवरी १९४

जनता राज

ज़ाहिद सोथरवी—

फ़रेबे-नज़र

तुम तो कहते थे वतनमें इन्क़लाब आने तो दो,
ख़ाक में मिल जायगा मनहूस ख़्वाबोंका शबाब,
आदमीयतके सरे अक़दसपै होगा ताजे-ज़र
और अपने आप वाँ हो जायगा ख़ुशबूका बाब

....

तुम तो कहते थे नये खुरशीदकी शादाब धूप
झोपड़ों पर ज़िन्दगी की रोशनी बरसायेगी,
ख़त्म हो जायेगा दौलत और महनत का नज़ाअ
मुल्क भर में शान्ति ही शान्ति लहरायेगी

....

तुम तो कहते थे कि मिट जायेगा महकूमी के साथ
चोरबाज़ारी का और रिशवत सतानी का चलन
ख़त्म हो जायेगी चोरी, रहज़नी, ग़ारतगरी
और सड़ जायेगा फ़रसूदा रिवाजों का बदन
तुम तो कहते थे—मगर मैं देखता हूँ आज भी
दामने-इन्सानियत काँटों में है, उलझा हुआ
आज भी क़ल्बो-नज़र पर है ग़ुलामी का दबाव
ज़िन्दगी की राह से इन्सान है भटका हुआ

....

ज़िन्दगी हो गई .खुद अपनी निगाहोंमें हक़ीर—
वे महो काहफ़शाँ रातें यह काज़िब सुबहें,
मुसकराये कहीं तारे न कहीं फूल खिले,
शबे-दै-जूरकी ताज़ीमको .खुरशीद झुके,
हाय आज़ाद ग़ुलामोंका यह मजबूर ज़मीर ?

....

दौलतो-ज़ारकी नुमाइश यह लिबासोंका निखार—
यह सियासतका .खुमो-चस्म यह अकी-गौहर,
यह चमकते हुए ओहदे, यह चमकते लीडर,
ख़ुमे तेज़ाबमें हैं, शहदकी मक्खी बनकर,
मुल्को-मिल्लतके डिरामेके यह झूटे किरदार

....

—निगार अप्रेल १९५२

ये चीख़ती चोटें सीनेकी, यह बोलते आँसू आँखोंके
डूबे हुए करबो-काविशमें ग़मनाक तबस्सुम होंटोंके
रिसते हुए नासूरोंकी दुकाँ .जख़्मोंकी कराहोंके गाहक
यह इस्मतो-दींके सीनेमें जुर्मोंके ख़राशोंके दीपक

—शाइर जनवरी १९५२

एक महाजरीन—

जश्ने-आज़ादी

लेकिन इस दरगाहके बाहर ह.ज़ारों मील तक,
वे कफ़न लाशोंकी बू थी और हवाओंकी सनक,
काँपते बच्चोंके सर, सहमी हुई माँओंके हात
हाँपते मुर्दोंके रों[1], चलते शहीदोंकी बरात

१. मृतकों का समूह ।

चीख़ते ढाँचोंकी खाई बोलते मर्दोंके ग़ार
रेंगते तारीक साये, नाचते ख़ूनी ग़ुबार

बिलबिलाते गाँव, रोते शहरियोंकी टोलियाँ
भागती माँओंके सीने से निकलती गोलियाँ
ख़ूँ चुका बुर्क़े, सुलगती चादरें, ज़ख़्मी सुहाग
इस्मतोंकी हड्डियोंको चाटती शोलोंकी आग

उल्फ़तोंकी चीख़ टूटी चूड़ियोंकी सिसकियाँ
जो ज़मींसे बोलता था, आह उस ख़ूँके निशाँ

वोह रगोंका टूटना वोह ज़िन्दा लाशोंकी कराह
आह वोह झुलसे हुए ऐसाब वोह चेहरे सियाह
वोह सुलगते शहर, वोह जलता हुआ चर्बीका तेल
वोह नहा कर ख़ून में धुलते हुए तूफ़ान मेल

एक तरफ़ माथोंका विरसा सरगराँ सज्दोंका दाग़
इक तरफ़ बुझते हुए महराबो-मैम्बरके चराग़

इक तर.फ तेग़ोंके सायेमें कलाहोंका ग़रूर
इक तरफ़ कुरआन-ओ-काबा सबके सब ज़ख़्मोंसे चूर
इक तरफ़ पैग़म्बरो-जिबरीले-य.जदाँ जेरे-दाम
इक तर.फ वे काबाओ-वे-मस्जिदो मेंबर इमाम
इक तर.फ शीशेसे टकराते हुए गुल रंगे-जाम
इक तर.फ अपनी भी माका दूध बच्चेपर हराम

तेज़ है, जिसके नफ़ससे आज हर लालेकी आग
इस हवासे बुझ चुके हैं, सच बता कितने सुहाग ?

जिनके ज़ख़्मोंपर पड़ा है, आज मिल्लतका नक़ाब
उन शहीदोंकी रगोंसे किसने खींची है शराब ?

ख़श्त-ए-दीवारसे आती है, जिनके ख़ूँकी बू
आज उन्हींके ज़र्द चहरे देखकर हँसता है तू

कितनी गलियोंके ख़ुनक सायेमें कुम्हलाते हैं, रूप
आह किन चेहरोंको झुलसाती है आज़ादीकी धूप

....

आज भी रीशो-अबा है, मस्जिदो-मेम्बरका सूद[1]
आज भी हैं, रौनक़े-बाज़ार काबेके यहूद[2]

....

लब कुशाई अब भी है, हक़्क़ो-सदाक़तपर हराम[3]
आज भी सुक़रातका है, ज़हरसे लबरेज़ जाम[4]

ऐतबारे-नाख़ुदा और बादबाँ कुछ भी नहीं[5]
बहरके सीनेमें जुज़ मौजे-रवाँ कुछ भी नहीं[6]

---

१. नमाज़-इबादतका उपहार लम्बी दाढ़ी और ढीला चोग़ा है; २. आज भी काबेका बाज़ार यहूदियोंसे भरा हुआ है; ३. वाणीपर आज भी बन्धन है; ४. सुक़रात जैसे सत्यवादियोंको आज भी ज़हरके प्याले पीने पड़ते हैं; ५. मल्लाह और नावके पाल विश्वस्त नहीं; ६. दरियामें बहावके अतिरिक्त क्या है ।

इन शिकस्ता किश्तियोंके डूबनेका ग़म न कर
फ़ितरते-दरिया समझ[1], गरदाबका[2] मातम न कर
यह हवाएँ, यह अँधेरा, यह तलातुम[3], यह भँवर
हैं किसी तूफ़ाने-नौ-आग़ाज़के पैग़ाम्बर[4]
बहर[5] कहता है सफ़ीने[6] डूबकर रह जायेंगे
मौज[7] कहती है यह साहिल[8] दूर तक बह जायेंगे
कोई तुग़यानी[9] हो अपना रुख़ बदलती है ज़रूर
नाख़ुदा डूबे कि उभरे, मौज चलती है ज़रूर

—निगार जून १९५१

'अफ़सर' सीमाबी अहमदनगरी—

दोज़ख़

छा गया कितने शगूफ़ोंपै[10] तबाहीका ग़ुबार
कितने सूरज हैं, ज़मानेमें अँधेरेका शिकार
ज़र्रा-ज़र्रा है, यहाँ सिद्क़-ओ-सफ़ाका[11] मदफ़न[12]
हसरतें बेचती फिरती हैं, शहीदोंके कफ़न

....

रोज़े-रोशनके जलूसें[13] हैं अँधेरे कितने
बन गये काफ़िलए-सालार[14] लुटेरे कितने

---

१. दरियाका स्वभाव; २. भँवरका; ३. बहाव; ४. नवीन तूफ़ानके सन्देश-वाहक; ५. दरिया; ६. नाव; ७. लहरें; ८. दरियाके किनारे; ९. बाढ़; १०. फूलों पै; ११. सचाई, निष्पक्षताका; १२. क़ब्र; १३. प्रकाशमान महफ़िलोंमें; १४. यात्रीदलके नेता।

दीनो-दौलतके सनम, नस्लो-सियासतके सनम
यह फ़लाकतके[१] बयाबाँ[२], यह अमारतके सनम[३]
कारवाँ[४] ख़ाकबसर[५]-शोलाचुकाँ राह गुज़ार
देख हर मोड़ पै वज्दानो-बसीरतके मज़ार[६]
यह तमद्दुनके[७] पुजारी, यह क़दामतके इमाम[८]
यही दुनिया है, तो या रब! तेरी दुनियाको सलाम
लहलहाते ही रहे जुहलो-क़यादतके अलम[९]
भूक खाती ही रही बिकती हुई इस्मतकी[१०] क़सम
तूने आदमको दिये ख़ुल्दो[११]-जहन्नुमके[१२] फ़रेब
कभी तस्नीमके[१३] धोके, कभी ज़म-ज़मके[१४] फ़रेब
यह ख़ुदाई है तो पिन्दारे-ख़ुदाई[१५] कब तक?

—निगार मार्च १९५१

'फ़ज़ा' इब्न फ़ैज़ी—

क्या ख़बर थी

क्या ख़बर थी कि रात आयेगी
ज़हरे-ग़म अपने साथ लायेगी

१-२. मुसीबतोंके बीहड़ जंगल; ३. शासक; ४–५. यात्रीदल धूल-धूसरित, व्यथित मार्ग रत है; ६. अनुसन्धानकर्ता और पारखियोंकी क़ब्र; ७. संस्कृतिके, ८. प्राचीनताके अगुआ। ९. अन्धविश्वास और मूर्खताके झंडे; १०. शीलकी; ११. जन्नत; १२; दोज़ख़, नरकके; १३. जन्नतमें मदिराकी नहरके; १४. काबेमें वज़ू करनेका पानी; १५. सृष्टिका ख़याल।

हर सहर[1] होगी नूरका[2] मदफ़न[3]
हज़्म कर लेगा महरो-महको[4] गहन

....

गुलशनों पर हँसेंगे वीराने
मुसकरायेंगे अब बलाख़ाने

सीपको अपने छोड़ देंगे गुहर[5]
नाग बनकर डसेंगे ताजो-क़मर

सुबह खायेगी धूपकी क़समें
चाँदनी होगी रातके वसमें

—निगार जून १९५४

जश्ने-ग़ुलामी

ख़ूँ-चुका[6] हैं फव्वारे, शोलाज़न[7] हैं, पैमाने
उफ़ यह रंगों-निकहतके मरमरी बलाख़ाने[8]

बाग़से बयावाँ तक इन्क़लाब बिखरे हैं,
ख़ूने-बेगुनाहीसे तख़्तो-ताज निखरे हैं,

पूजते हैं, पैमाने सोज़ो-तिश्ना कामीको
भूलती नहीं दुनिया रंजे-ना-तमामीको

जन्नतोंका धोका है, अब सियाह ख़ानोंपर
इशरतोंके सज्दे हैं, ग़मके आस्तानोंपर

---

१. प्रातःकाल; २. प्रकाशका; ३. क़ब्र; ४. चाँद-सूर्यको; ५. मोती; ६. रक्तपूर्ण; ७. आगसे भरे हुए; ८. सुगन्धित वायुकी आफ़तोंसे पूर्ण झोंके।

फूल बनके मँहकी है, चोट कितने सीनोंकी
नेश्तर है, ग़ुरबतका, हर शिकन जबीनोंकी

उफ़! नसीम लौटेगी इस चमनसे क्या लेके
हाशिया लहूका है, हर वरक़पै लालेके

आह किन चराग़ोंने आँधियोंसे साज़िश की?
किन क़मर नशीनोंने रातकी परस्तिश की?

बन-सँवरके निकले हैं, बुत सियाहफ़ामीके
है, निगार ख़ानोंमें जश्न बस ग़ुलामीके

—निगार अगस्त १९५४

साक़ी जावेद बी० ए०—

नये सवेरे

ख़ुश[1] कि क़िला-ओ-ईवाँसे[2] उठ रहा है, धुआँ
उभर रहे हैं, उफ़क़पर[3] नई सहरके[4] धुआँ

....

चले निकलके वोह महलोंसे सर बिरहना[5] जलूस
उरूसे-नीलके जलवोंके बुझ गये फ़ानूस

१. मुबारक; २. क़िले और महलोंसे; ३. आस्मानपर; ४. प्रातःकालके; ५. नंगेसर;

क़बा[1]-ओ-रीशके[2] रंगीन दाम[3] जलने लगे
दहकती आगमें मीरो[4]-इमाम[5] जलने लगे

ख़ुशा कि आज पुराने तिलिस्म टूट गये
सनमकदोंमें ख़ुदाओंके जिस्म टूट गये

मगर यह क्या कि उफ़क़पर है, सुर्ख़-सुर्ख़-सी आग
बनाते-माहे-सुरैयाका[6] लुट रहा है, सुहाग
सुलग रहे हैं हवाओंके रेशमी आँचल
धड़क रहे हैं, सितारोंके जगमगाते महल

ख़िरदकी[7] आगमें तप-तपके ढल रहे हैं, शकूक[8]
मचल रही है, इरादोंमें जुहल[9]-ओ-जुर्मकी भूक

तरस रहे हैं, चराग़ोंको सुबहो-शामके ताक़
ज़मींपै आज रसूलोंका उड़ रहा है मज़ाक़

....

बनाम-नूर चमकते हुए अँधेरे हैं,
नये उफ़क़से यह निकले हुए सवेरे हैं,

—निगार मार्च १९५२

---

१. ढीला चोग़ा; २. दाढ़ीके; ३. जाल; ४. सरदार; ५. मज़हबी नेता; ६. चान्द-नक्षत्रका; ७. अक़्लकी; ८. सन्देह; ९. मूर्खता, दक़ियानूसी-ख़यालकी।

यह ईद

यह ईद, कैफ़ो-तरबका[1] सरूद[2] गाती हुई
यह क़सरे[3]-हाय इमारतको जगमगाती हुई

यह मोतियोंसे यह हीरोंसे खेलती हुई ईद
तजल्लियोंका[4] यह बादा[5] उँडेलती हुई ईद

निखारती हुई महलोंको, ख़ानक़ाहोंको[6]
निशाने-क़ुद्स[7] बनाती हुई, कुलाहोंको[8]

यह निकहतोंकी[9] ज़ियाओंके[10] साथ चलती हुई
यह ज़र निगार क़बाओंके[11] साथ चलती हुई
यह मुसकराती हुई बेकसाँ[12] यतीमोंपर[13]
यह बिजलियाँ-सी गिराती हुई हरीमोंपर[14]

बिसाते-वक़्तपै रखकर मसर्रतोंके अयाज़[15]
यह ग़मकदोंमें जलाती है, आँसुओंके चराग़

यह ईद जिससे दुआओंमें आग लगती है
दु:खे दिलोंकी सदाओंमें आग लगती है

मसल रही है जो कलियाँ, जला रही है जो फूल
उड़ा रही है जो फ़ाक़ोंकी सुबहो-शामपै धूल

---

१. हँसी-खुशीका; २. गीत; ३. महलोंको; ४. प्रकाशकोंकी; ५. मदिरा; ६. दरगाहोंको; ७. पवित्र चिह्न; ८. टोपियों, ताजोंको; ९. सुगंधियोंकी; १०. रोशनीमें; ११. सुनहरे लिबासोंके; १२. असहायों; १३. अनाथोंपर; १४. काबेकी चहारदीवारीपर; १५. खुशियोंके मदिरा-पात्र।

रुख़े-हयातपै बनकर जो भूक-प्यासका दाग़
जबीने-लातो-हुबलके[1], जला रही है चराग़

यह बन चुकी है ज़मानेमें मक्रो-.फनकी असास[2]
.खुशीके नामसे टूटी है, इक रसूलकी आस

—निगार मई १९५४

सरोश अ़सकारी तबातबाई—

अ़सरे हाज़िर [२८ में-से ६]

जो कल था वह हयातका उनवाँ है, आज भी
इन्सानियतका नंग ख़ुद इन्साँ है, आज भी

महरूमे-सुबह कल भी थी इन्सानियतकी रात
मोहताजे-आफ़ताबे-दरख़्शाँ है, आज भी

कल भी फ़सादो-क़त्लका बाज़ार गर्म था
.खुद मौत जिन्दगीसे पशेमाँ है आज भी

जो सिर्फ़ आदमी हो वोह कल भी कहीं न था
हिन्दू है कोई, कोई मुसलमाँ है, आज भी

....

इन .जुल्मतोंसे फिर भी न मायूस हो 'सरोश'
देख इक किरन उफ़क पै दरख़्शाँ है आज भी

—शाइर अक्टूबर १९५३

१. उन मूर्तियोंके नाम जो इस्लामसे पूर्व काबेमें पूजी जाती थीं;
२. जड़, नींव।

अदीबी मालीगाँवी—

ग़ज़ल

कहनेको है जनता राज
लेकिन जनता है मोहताज

हुस्नकी आँखोंमें आँसू
वह गई उल्टी गंगा आज
आज है अपनोंका रोना
कल थे ग़ैरोंके मोहताज

किस-किसकी हम बात सुनें
हर कोई है, साहबे-ताज
जिसके पसीनेसे ख़िरमन
वह ख़ुद रोटीको मोहताज

अपनी हुकूमत है फिर भी
भूके हैं, कुछ काम न काज
माना कि बरबाद हुए
मिल तो गया हमको सोराज

हम वह माली हैं 'मुख़्तार'
बेच दें जो गुल्ज़ारकी लाज

—शाइर जून १९५१

महज़ूँ नियाज़ी–

१५ अगस्त १६५१ [२४ शेर में–से ६ शेर]

....

हर-एक साँसमें पिन्हाँ है मुज़महल-सी कराह
हर-एक गामपै रक़्साँ है, मौतका-सा जमूद

....

नज़रकी गोदमें अश्कोंकी आग जलती है,
है सुबहे-नौकी यह आमद कि धूप ढलती है,

....

सुना तो यह था कि तक़दीरे-आशियाँ चमकी
गया वह दौरे-ख़िज़ाँ बज़्मे-गुलसिताँ चमकी

....

मगर जो ग़ौरसे देखा निगाहे-बीनामें
तो काँप-काँप उठे ज़िन्दगीके काशाने

....

दिलोंमें डूबके उभरी हैं, दर्दकी फाँसें
क़दम-क़दमपै यह मदफ़न नज़र-नज़र लाशें

....

'नासिर' मालीगाँवी—

आज़ादीके बाद

[१९ मेंसे ४]

मिली है, बारे-ख़ुदाया यह कैसी आज़ादी ?
कि ज़र्रा-ज़र्रा है हिन्दोस्ताँका फ़रियादी
समझ रहे थे मसाइबसे अब मिलेगी नजात
मगर नसीबमें लिक्खी हुई थी बरबादी
हम अपने दिलकी हक़ीक़त भी कह नहीं सकते
इसीका नाम है, फ़िक्रो-नज़रकी आज़ादी
दरिन्दगीकी भी हदसे गुज़र गया इन्साँ
बड़ा अजीब है, यह इन्क़लाबे-आज़ादी

—शाइर अप्रैल १९४८

शफ़ीक़ ज्वालापुरी—

यास

उस हसीं ख़्वाबकी उफ़ ऐसी भयानक ताबीर
जैसे भूचालसे गिरजाए कोई रंग महल
डूब जाये कोई कश्ती लबे-साहिल आकर

—शाइर दिस० १९५१

आल अहमद सरूर—

मातम क्यों ?

ऐ दोस्त ! यह अफ़सानए-बर्बादिए-दिल[1] क्या ?
कब सुबहकी आमदपै[2] सितारे नहीं ढलते ?
तज़ईने-गुलिस्ताँ[3] है, कोई खेल नहीं है
साहिलका[4] फ़सूँ[5] लाख .खुश आइन्द[6] है, लेकिन
जज़्बातका[7] अंजाम[8] परीशाँनज़री[9] है

तू वक़्तके इसरारका[10] महरम[11] नहीं शायद
मस्तोंके बहकनेमें भी इक रम्ज़े-जुनूँ[12] है
याँ कसरते-नज़्ज़ारा[13] है .खुदमानए-ग़म[14] भी
आँच आई जो दामन पै तो शोलोंसे हुज़र[15] क्यों
तख़रीबमें[16] तामीर[17] है, तामीरमें तख़रीब

....

मातम तो कभी शेवए-रिन्दाँ[18] नहीं होता
कब रातका हर ख़्वाब परीशाँ नहीं होता

---

१. दिलकी बर्बादीकी कथा; २. आगमनपर; ३. उपवनका शृंगार, शोभा; ४. दरिया किनारेका; ५. जादू; ६. मनमोहक; ७. भावुकताका; ८. परिणाम; ९. आकुलताजनक; १०. युगकी माँगका; ११. ज्ञाता; १२. दीवानगीका ढंग; १३. दृश्य; १४. ग़मको रोकनेवाला; १५. परहेज़; १६. विनाशमें; १७. निर्माण; १८. मद्यपोंका उद्देश्य ।

किस-किसका लहू सर्फ़े-बहाराँ नहीं होता
साहिलसे तो अन्दाज़-ए-तूफ़ाँ नहीं होता

अफ़कारका[1] शीराज़ा परेशाँ नहीं होता

यह दौरे-तग़य्युर[2] तेरा महकूम[3] नहीं है,
यह राज़[4] अभी तक तुझे मालूम नहीं है,
मसरूफ़[5] है, जो आँख वोह मग़मूम[6] नहीं है,
उज़राओंकी[7] तख़लीक़[8] तो मालूम नहीं है,

इन्साँ है कोई पैकरे-मासूम नहीं है,

....

साया है अगर कलका तेरे क़ल्बे-हज़ींपर[9]
कुछ ख़ूने-ज़िगरसे भी खिला फूल ज़मींपर
महनतका अर्क़[10] आये अगर तेरी जबींपर[11]
मौक़ूफ़[12] नहीं तेरी चुनाँ और चुनींपर
हैं फ़ाश[13] वोह इक रिन्दे-ख़राबात नशींपर

बेदार[14] है जो ज़हन वोह मायूस[15] नहीं है

—आजकल अगस्त १९५४

---

१. चिन्ताओंका समूह; २. क्रान्तियुग; ३. आधीन; ४. भेद, बात; ५. व्यस्त, ६. ग़मगीन, रंजीदा; ७. कुवारी लड़कियों, हज़रत मरियमका लक़ब; ८. उत्पत्ति; ९. ग़मगीन दिलपर, १०. पसीना; ११. मस्तकपर; १२. आधारित; १३. प्रकट; १४. जागा हुआ; १५. निराश ।

'सह्र' बरअमदपुरी–

न तूने तोड़ी है, क़ैद तनहा, न मुझको तनहा मिली रिहाई
क़फ़समें मिल-जुलके रहनेवाले चमनमें यह इज़्तनाब क्यों है ?
'सह्र' असीरीमें सब्र पैमा जफ़ाएँ सैयादकी थीं लेकिन–
क़फ़ससे हम आ गये चमनमें तो ज़िन्दगी फिर अज़ाब क्यों है ?

—शाइर जुलाई १९५१

अकबर हैदराबादी–

वादए-नौ

गुल हुईं तुन्द हवाओंमें हज़ारों शमएँ
एक क़न्दील मगर अम्नकी जलती ही रही

यह अलग बात है, ज़ालिमने सुनी या न सुनी
चीख़ मज़लूमके सीनेसे निकलती ही रही

आज ही क्या है, कि सदियोंसे यह नापाक ज़मीं
आदमीयतके लिए ज़ह्र उगलती ही रही

वक़्त शाहिद है, कि चिमनीसे मिलोंकी 'अकबर'
आहे-मज़दूर धुआँ बनके निकलती ही रही

—शाइर जुलाई १९५१

अबुल मजाहिद 'जाहिद'—

साक़ी

निज़ामे-नौमें यह तेरी अजब बेदाद है, साक़ी !
जो प्यासे हैं, उन्हींके हक़में तू जल्लाद है साक़ी !

शरावे-नौ पै भी क़ब्ज़ा है, ज़र्री-जाम वालोंका !
ग़रीबोंके लबोंपर आज भी फ़रियाद है, साक़ी !

वही मै दूसरोंकी और वही ग़ैरोंके पैमाने !
यह धोका है, कि अपना मैकदा आज़ाद है साक़ी

अब उसको भी हमारी वज़ए-रिन्दाना नहीं भाती !
वह मैख़ाना हमारे दमसे जो आबाद है साक़ी !

ज़रा कतराके चल ईमाँ-शिकन तहज़ीबे-हाज़िरसे
यह जन्नत तो है, लेकिन जन्नते-शद्दाद है, साक़ी !

चमन वाले करें अपनी तबाहीका गिला किससे
यहाँ तो भेसमें मालीके हर सैयाद है साक़ी !

तेरे मैख़ानेसे उठकर दिले 'ज़ाहिद' पै क्या गुज़री
न पूछ इसको बहुत ही दुःख भरी रूदाद है साक़ी !

—शाइर अगस्त १९५१

स्वराज्य रूपी अमृतपानके साथ-ही-साथ भारत-विभाजन रूपी विष भी पीना पड़ा। उससे दिलो-दिमाग़की जो हालत हुई, उसकी कुछ झलक पिछले पृष्ठोंमें दिखाई दी है। इन शाइरोंमें साम्यवादी मुस्लिमलीगी और कांग्रेस-विरोधी ऐसे शाइर भी हैं, जिनका उद्देश्य ही विरोधी भावनाएँ व्यक्त करना है। कुछ ऐसे देशभक्त शाइर भी हैं, जिनके हृदय भारत-विभाजनके फलस्वरूप दुःख-शोक और निराशासे उद्विग्न हो उठे थे। उन सभीने अपने-अपने मनोभाव व्यक्त किये हैं।

उक्त शाइरोंसे भिन्न विचार रखनेवाले कुछ ऐसे शाइर भी हैं, जिन्होंने पराधीनताके अभिशापसे मुक्ति दिलानेवाली स्वतन्त्रताका हृदयसे स्वागत किया और जो भारतकी उन्नतिमें समूचे विश्वकी उन्नति देखते हैं। उनके कलामकी कुछ झलक देखिए—

बिस्मिल सईदी—

नग़मए-आज़ादी

१५ में से ६

आज हम आज़ाद हैं, हिन्दोस्ताँ आज़ाद है,
यह ज़मीं आज़ाद है यह आसमाँ आज़ाद है,

ओजे-आज़ादीपै है जमहूरियतका आफ़ताब[1]
आज जो ज़र्रा जहाँ भी है वहाँ आज़ाद है,

जिस्मे-आज़ादीमें है जमहूरियतका ख़ून गर्म
आँख है आज़ाद, दिल आज़ाद, जाँ आज़ाद है,

---

१. स्वतन्त्रताके मस्तकपर स्वतन्त्रताका सूर्य झलक रहा है।

मुल्कमें नाफ़िज़[१] हुआ इस तरह जमहूरी निज़ाम[२]
जैसे क़ैदे-जिस्ममें रूहे-रवाँ[३] आज़ाद है,

इम्तयाज़े-लालओ-गुल[४] है न फ़र्क़े-ख़ारो-ख़स[५]
सायए - अब्रे - बहारे - गुलसिताँ आज़ाद है,

गुरदवारेपर,[६] कलीसापर[७], हरमपर[८], दैरपर[९]
चाहे जिस मंज़िलपै ठहरे कारवाँ आज़ाद है,

लाइने-आज़ादीसे

१४ में-से ६

हाँ बता जहदे-मईश्‍श्तमें[१०] इस आज़ादीसे क़ब्ल ?
सर[११] किये हैं, तूने कितने मार्का हाए-नबर्द[१२]
रुक गये हैं अब तेरे क्या कारोबारे-ख़ानगी[१३] ?
पड़ चुका है आज क्या तेरा सियह बाज़ार सर्द[१४]

बाज़िए-दौलतमें क्या पड़ता नहीं अब तेरा दाव
क्या बिसाते-ज़रपै[१५] अब रक़्साँ[१६] नहीं है तेरी नर्द[१७]
क्या तेरी चाँदीका चाँद अब पड़ गया पहलेसे माँद
क्या तेरे सोनेका सूरज हो गया है आज ज़र्द

१. जारी; २. प्रजातन्त्र-शासन; ३. आत्मा; ४. न लाला और फूलोंमें अन्तर है; ५. न काँटे-घासमें; ६. गुरु-द्वारा; ७. गिरजाघर; ८. मस्जिदपर; ९. मन्दिरपर; १०. आर्थिक संकट क्षेत्रमें; ११. विजय; १२. युद्ध; १३. व्यक्तिगत व्यापार; १४. काला बाज़ार ठण्डा पड़ गया है; १५. धनकी बिसातपर; १६. नृत्य करती हुई; १७. गोट।

हुर्रियत[1] है रहने-मिन्नत आज उन अहरारकी
आह वोह मज़लूम लेकिन वाह वोह आज़ाद मर्द
हश्र तक तारीख़के लबपर रहेगी जिनकी आह
ता-अबद महफ़ूज़े-दिल फ़ितरत रखेगी जिनका दर्द

मुनव्वर लखनवी—

ऐ दाइयाने इन्क़लाब[2]

१४ में-से ६

अगर नहीं है यह दीवानगी तो फिर क्या है
क़फ़ससे पाके रिहाई चमनको ठुकराना
यह क्या मज़ाक़ है नक़्दो-निगाहका आख़िर
गुहरकी[3] क़द्र न करना अदनको[4] ठुकराना
जो तिश्नगीको[5] मिटाये वह जाम[6] हो बेक़द्र
यह क्या है काम रदाए-दहनको[7] ठुकराना
हसूले-मुश्कपै[8] यह बद्दमाग़ियाँ तौबा!
हुज़र ग़ज़ालसे[9] करना, ख़तनको ठुकराना
हुई है जिससे तेरे बाजुओंकी आराइश[10]
उसीकी ज़ुल्फ़े-शिकन दरशिकनको ठुकराना
करेगा तुझको 'मुनव्वर' सुपुर्द-रुसवाई
वतनमें पलके यह तेरा वतनको ठुकराना

---

१. स्वतन्त्रता; २. क्रान्तिके ठेकेदारोंसे, साम्यवादियोंसे; ३. मोतीकी; ४. स्वर्गीय उद्यान; ५. प्यासको; ६. मद्य-पात्र; ७. मुँहके पर्देको, चादरको; ८. कस्तूरी मिलनेपर; ६. कस्तूरी मृगसे; १०. शृङ्गार, शोभा।

प्रोफ़ेसर आग़ासादिक़—

मुनकिराने-सुबह

बिजलीको असीरे-दाम[1] कहनेवालो !
किरनोंको स्याह फ़ाम[2] कहनेवालो !
तग़लीते-हकायक़[3] तो ज़वाले-फ़न[4] है
रोज़े-रोशनको[5] शाम कहने वालो !

रअ़ना जग्गी—

मुनकिराने-बहार[6]

हर यक़ींको गुमाँ समझते हैं,
आगको भी धुआँ समझते हैं,
हैं कुछ ऐसे भी लोग जो ज़िदसे
फ़स्ले-गुलको ख़िज़ाँ समझते हैं,
जल्वए-सुबहको[7] इक इशवए-शब[8] कहते हैं,
ना-समझ लोग करमको[9] भी ग़ज़ब कहते हैं,
एक शीशा भी नहीं, जिनकी मताए-हस्ती[10]
वह भी अब ख़ुदको ख़रीदारे-हलब[11] कहते हैं,
जिनके एहसासपै ग़ालिब हैं फ़नाके असरात[12]
जाविदाँ शैको भी वह जान-बलब[13] कहते हैं,

---

१. जालमें फँसी हुई; २. काली; ३. वास्तविकताको झुठलाना; ४. कलाका पतन; ५. प्रकाशको; ६. बहारोंके विद्रोही; ७. प्रातःकालीन शोभाको; ८. रात्रिका चमत्कार; ९. मेहरबानीको १०. जिनके पास पीनेको एक गिलास नहीं; ११. रूसके एक शहरका नाम; १२. जिनकी भावनाओं-पर मृत्यु-भय छाया हुआ है; १३. अमरत्व प्रदान करनेवाली वस्तुको भी घातक समझते हैं।

आलमे-इश्कमें[1] हर लफ़्ज़के मानी हैं नये
बे-ज़बानी को यहाँ हुस्ने-तलब[2] कहते हैं,
हैं हक़ीक़तमें जो तस्लीमो-रज़ाके बन्दे
वह ग़मो-रंजको भी ऐशो-तरब कहते हैं

कृष्ण 'असर'—

नई जोत

कितने जीवन-दीप बुझाकर
एक सुहानी जोत जलाई
उजली-उजली
प्यारी-प्यारी
न्यारी-न्यारी
नूरका इक फ़व्वारा कहिए
झिल-मिल करती किरनें फूटीं
चमक उठा धरतीका कन-कन
डगर-डगर है रोशन-रोशन
नगर-नगर है जग-मग, जग-मग
दमक उठे हैं,
पूरब-पच्छिम, उत्तर-दक्खिन
जोत जली है,
जोत जली है,

---

१. प्रेम संसारमें; २. मौन रहनेको सुरुचिपूर्ण कहा जाता है।

जोत जलेगी
कितने ही तूफ़ाँ गुज़रे हैं
कितने ही तूफ़ाँ गुज़रेंगे
लाख उठेंगे सुर्ख़ बगोले
दम-दम बढ़ता हुआ अँधेरा
जोत मगर यह बुझ न सकेगी
जोत जली जलती ही रहेगी
बैरी लाख जतन कर देखें
इस जोतीके हम रखवाले
इसे बुझाये किसकी हिम्मत ?
दिन बीतेंगे जुग बदलेंगे
जोत जलेगी
जोत जलेगी

गोपाल मित्तल—

आते ही हवाए-मौसमे-गुल कुछ चाक गरेबाँ[1] होते हैं,
वहशी आहिस्ता-आहिस्ता मानूसे-बहाराँ[2] होते हैं
इमकाने-तरबसे[3] हिरमाँका एहसास फ़ज़ूँ तर[4] होता है,
जब वस्लकी साअ़त आ पहुँचे शिकवे भी फ़रावाँ[5] होते हैं,

---

१. बहार आनेपर कलियोंका गरेबा फाड़कर फूल होना स्वाभाविक है; २. बहारोंके अभ्यस्त; ३. सफलताओंकी आशा होनेपर; ४. निराशाकी भावना और भी बढ़ जाती है; ५. मिलन जब होगा तो परस्पर शिकवे-शिकायत भी होंगे !

गर ख़न्दए-गुल है जामादरी[१] ऐ दीदावरो[२] ऐसा ही सही
जब फ़स्ले-बहाराँ[३] आती है, हर बातके इमकाँ[४] होते हैं,
तू शिकवा बलब इस बातपै है, तरतीबे-गुलिस्ताँ नाकिस[५] है
मैं हैराँ हूँ कब गुल-बूटे शायाने-गुलिस्ताँ होते हैं,
नग़मेसे अगर महरूम[६] है दिल माहौलको[७] मत बदनाम करो ?
कितना ही जुनूँज़ा हो मौसम[८] कब ज़ाग़ ग़ज़लख़्वाँ[९] होते हैं

गोपीनाथ अम्न—

कम्यूनिटी प्रॉजक्ट

देहातमें तामीरके जज़्बेको[१०] ज़रा देख
आ और ज़रा हिन्दे-हक़ीक़ीकी फ़िज़ा[११] देख
ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न[१२] आ देख,

ज़रदार हैं[१३], कंगाल हैं, छोटे हैं, बड़े हैं,
सब जज़्बए-तामीरसे[१४] सरशार[१५] खड़े हैं,
ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, आ देख

---

१. फूलोंकी मुसकान परिधान बदलना है; २. देखनेवालो; ३. बहार आनेपर; ४. हर उपद्रवोंकी सम्भावना होती है; ५. तुझे इस बातकी शिकायत है कि वाटिकाकी व्यवस्था उचित नहीं; ६. संगीतसे अनभिज्ञ; ७. वातावरणको; ८. मौसम कितना ही मस्त करनेवाला हो; ९. कव्वे: ग़ज़ल नहीं गाते; १०. निर्माणकी भावनाको; ११. वास्तविक भारतकी झलक १२. भारतके विरुद्ध नारा लगानेवालो; १३. धनिक; १४. नव-निर्माणकी भावनासे; १५. मस्त, प्रसन्न ।

मासूम हसीनोंकी यह हँसती हुई मेहनत
नौख़ेज़ जवानोंमें मशक़्क़तकी रक़ाबत[1]

ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, आ देख

बातोंसे नहीं हाथोंसे होता है यहाँ काम
इस दौरमें होनेका है बातोंसे कहाँ काम

ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, आ देख

तू क़िसरे-हवाईके[2] बनानेका है मुश्ताक़[3]
यह गाँवोंके हालात बदलनेके हैं मुश्ताक़

ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, आ देख

है तेरी ग़रज़ रोज़ नये फ़ित्ने उठाना
यह चाहते हैं गाँवको गुलज़ार बनाना

ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, आ देख

है जलसे-जलूसोंमें तेरे दिनोंका तसर्रुफ़[4]
यह महवे-मशाग़ल[5] हैं, तो तू महवे-तअस्सुफ़[6]

ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, आ देख

सरशारे-वतन[7] यह हैं, कि तू, मुझको बता दे
मेमारे-वतन[8] यह हैं कि तू मुझको बता दे

ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, आ देख

---

१. नये उठते हुए किशोरोंमें श्रम करनेकी परस्पर प्रतियोगिताएँ; २. हवाई महल; ३. इच्छुक। ४. व्यय; ५. कार्य-व्यस्त; ६. रंज और अफ़सोस करनेका आदी; ७. अपने देशपर प्रसन्न, मस्त; ८. देश-निर्माता।

क्यों ग़ैर मुमालिकका परिस्तार[१] हुआ है
नज़रें तो उठा देख तेरे मुल्कमें क्या है—
ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, ऐ नाराज़न, आ देख

इस्माइल 'इसरार'

रह-गुज़ारोंमें[२] काँटे बिछाओ नहीं
आज़माओ नहीं, आज़माओ नहीं
हम नशेमन[३] बनानेमें मसरूफ़[४] हैं
बिजलियो ! गर्म आँखें दिखाओ नहीं
मुसकराती कलीपरकी शबनम हो तुम
महरे-ताबाँसे[५] आँखें लड़ाओ नहीं
जाम दिलकश सही, जाम रंगीं सही
ज़हर हीलेसे[६] लेकिन पिलाओ नहीं
फिर हवाओंको डसने लगीं नागिनें
गेसुओंको फ़ज़ामें[७] उड़ाओ नहीं
आओ पहलू नशीनीका[८] हंगाम है
हिचकिचाओ नहीं, हिचकिचाओ नहीं
लाख 'इसरार', इसरार[९] कोई करे
दिलमें जो बात है मुँहपै लाओ नहीं

---

१. अन्य देशोंका भक्त (संकेत रूसकी तरफ़ है); २. रास्तोंमें; ३. घोंसला, घर; ४. व्यस्त; ५. चमकते सूर्यसे; ६. बहकाकर, बहाना बनाकर; ७. हवामें, वातावरणमें; ८. पहलूमें बैठनेका; मिल-जुलकर बैठनेका; ९. आग्रह ।

विश्वनाथ 'दर्द'

लाख तूफ़ान उठें लाख बगोले रोकें !
हमको पहुँचाएगा मंज़िलपर जनूने-कामिल
हुस्ने-फ़रदाके हसीं बाग़ दिखाने वालो
आजकी बात करो कलसे भला क्या हासिल
आज दावा है उन्हें वक़्तकी नब्बाज़ीका
जा रहे वक़्तकी रफ़्तारसे कलतक ग़ाफ़िल

—आज़ादीका अदब

देश-प्रेम

'जोश' मलीहाबादी–

ऐ जंवानाने-काश्मीर

८ बन्दमें-से २

....

बे ग़र्क़ हुए कोई उभरता ही नहीं है
जो क़ौमपै मरता है वोह मरता ही नहीं है,

....

तूफ़ानको ठुकराओ, हवाओंको बदल दो
दरियाओंको रौंदो तो पहाड़ोंको कुचल दो
मरदाना बढ़ो मौतको पैग़ामे-अजल दो
फूलोंकी तमन्ना है, तो काँटोंको मसल दो

तख़रीबका जब तक कि तलातुम नहीं आता
तामीरके होंटोंपै तबस्सुम नहीं आता

सीनोंको चलो अरसए-हिम्मतमें उभारें
हाँ, आओ तमाचा रुख़े-सैलाबपै मारें
शेरोंकी तरह आओ कछारोंमें डकारें
पलती है, सदा ख़ूनके धारोंमें बहारें,

इज़्ज़तके ख़राबातमें पीने नहीं देती
दुनिया कभी नामर्दको जीने नहीं देती

—आजकल १५ नवम्बर १९५१

'यही' आज़मी—

काश्मीरपर पाकिस्तानका अधिकार साबित करनेके लिए सुहरावर्दी और नूनने जिस अक्तूबरमें विषैले भाषण दिये, उसी अक्तूबरमें 'यही' आज़मीकी यह नज़्म छपी—

ऐ जन्नते-काश्मीर

१४ बन्दमें-से २

काश्मीरके सौन्दर्य—प्राकृतिक दृश्योंका वर्णन करते हुए फ़र्माते हैं—

है रब्त[1] हमेशासे हमें तेरे चमनसे
तेरे गुलो-रेहाँसे[2] तेरे सरू[3]-ओ-समनसे[4]
सदियोंका तअल्लुक़ है, तेरा कोहो-दमनसे[5]
है निस्बते-देरीना[6] तुझे गंगो-जमनसे

वाबस्ता[7] वतनसे है, अज़लसे[8] तेरी तक़दीर
ऐ जन्नते—कश्मीर

अनन्त कालसे जिस वतनके साथ काश्मीरका भाग्य सम्बन्धित है। वह वतन कौन-सा है, इसका स्पष्टीकरण सुनिए—

---

१. अभ्यास, सम्बन्ध; २. फूलों और हरियालीसे; ३. सरोवृक्ष; ४. चमेलीके फूलोंसे; ५. पर्वतोंसे; ६. पुराना सम्बन्ध; ७. जुड़ी हुई; ८. सृष्टिके प्रारम्भसे।

है ख़ाके-वतन और तेरी वादिये-रंगीं[1]
जुज़्-ऐ-चमने-हिन्द हैं तेरे गुलो-नसरीं[2]
चल सकते नहीं अब सितमो-जौरके आईन[3]
है माइले-ताराज अबस कोशिशे-गुलचीं[4]
यह ख़ाके गुलो-लाल है, नाक़ाबिले तसख़ीर[5]
ऐ जन्नते-कश्मीर !

—आजकल सितम्बर १९५६

तैश सद्दीक़ी—

हदीसे-वतन

जिन दिनों भारत और पाकिस्तानमें विद्यामन्दिर-द्वारा प्रकाशित धार्मिक पुरुषोंकी जीवनीको लेकर जो मज़हबी तूफ़ान आया, जिसके परिणाम स्वरूप अनेक स्थानोंपर उपद्रव, आग़ज़नी, लूट, हत्याएँ हुईं। हिन्दुस्तान मुर्दाबाद और पाकिस्तान ज़िन्दाबादके नारे लगाये गये। तभी उर्दूमें इस तरह देश-भक्तिसे ओत-प्रोत नज़्म भी लिखी जा रही थी। वह भी एक मुसलमान द्वारा—

---

१. रंगीन घाटियाँ; २. तेरे सेवतीके फूल भारतके अंश हैं; ३. अत्याचारी क़ानून, ४. तुझे लूटने-खसोटनेका प्रयास शत्रुओंका व्यर्थ है; ५. फूलोंवाली पृथ्वी पराजित होने योग्य नहीं।

मेरा वतन, मेरा वतन, हयातो-कायनाते-मन
मेरे वतनकी सरज़मीं जमीलो-दिलकशो-हसीं
मेरे वतनका आसमाँ अज़ीमो-इ.ज्म आफ़रीं
यह पुर ख़लूस बस्तियाँ फ़लाहो-ख़ैरकी अमीं
सकूँ पसन्दो-सुलहजू बुलन्दज़र्फ़ो-पाकबीं
यह .ज़रफ़रोश खेतियाँ, सितारह ख़ेज़ोख़ुरजबीं
शगूफ़, बारोगुलचुकाँ, नज़र नवाज़ो-नाज़नीं
रवाँ-दवाँ है चारसू, फ़िज़ामें रूहे-अंगवीं
म.ज़ाक़े-दीद चाहिए, तजल्लियाँ कहाँ नहीं
मेरा वतन, मेरा वतन, हयातो-कायनाते-मन

मेरा वतन, मेरा वतन, हयातो-कायनाते-मन
यह साधुओंकी जन्मभूमि, सूफ़ियोंका यह वतन
तमद्दुनोंका मदरसः सक़ाफ़तों की अंजुमन
यह सब्ज़पोश वादियाँ, यह हरीफ़खत्त-ए-ख़तन
यह चश्मःहाए-जाँ फ़िज़ाँ, यह गंग और यह जमन
कहीं शहार मुज़तरब, कहीं शराब मौजज़न
लताफ़तें रविश-रविश, नफ़ासतें चमन-चमन
यह दिलबराने शोल-रू सहर जमालो-सीमतन
इशायतें अदा-अदा, इबारतें सुख़न-सुख़न
मेरा वतन, मेरा वतन, हयातो कायनाते-मन

मेरा वतन, मेरा वतन, हयातो-कायनाते-मन
यहीं पै रामो-लक्ष्मण पले, बढ़े, जवाँ हुए
यहीं पै नानको-किशन-ओ-बुद्ध गुहर फिशाँ हुए
यहीं पै सूर-ओ-तुलसी-ओ-कबीर नग़मख़्वाँ हुए
यहीं मुईन-ओ-वारिसो निज़ामे-हक़ बयाँ हुए
यहीं सलीमो-साबिरो-कलीम नुक्तःदाँ हुए
यहीं नज़ीरो-मीर मीरज़ा रूबावे-जाँ हुए
हक़ाइक़ो-बसाथरो-नज़रके तर्जुमाँ हुए
रसूले-ज़िन्दगी हुए, पयम्बरे - ज़मा हुए
मेरा वतन, मेरा वतन, हयातो-कायनाते-मन

मेरा वतन, मेरा वतन हयातो-कायनाते-मन
यह काश्मीरकी नज़हतें, हिमालयाकी रफ़अतें
यह सुबहो-शामे-काशी-ओ-अवधकी जाज़्बतें
यह देहली और लखनऊकी यादगार अज़मतें
यह अर्ज़े-ताजका अमू, यह शोकरीकी शौकतें
यह पुर शिकोह मक़बरे, यह ज़ोविक़ार तुरबतें
यह दीदः ज़ेब बाग़चे, यह दिलकुशा इमारतें
यह सीमो-ज़रकी बरिशें, यह फ़िक्रो फ़नकी बरकतें
यह आशिक़ीके मुअज्ज़िज़े, यह हुस्नकी करामतें
मेरा वतन, मेरा वतन, हयातो-कायनाते-मन

यह छावनी छाती हुई परबतपै घटाएँ
यह झूमती गाती हुई धरतीकी फ़ज़ाएँ
बहकी हुई, लहकी हुई, यह मस्त हवाएँ,
किस शाइरे-फ़ितरतकी तू ख़्वाबोंकी है ताबीर ?
ऐ जन्नते-कश्मीर !

सदियों तू रहीने-ग़मे-दौराँ[१] भी रहा है,
यह तेरा चमन बर्क़ बदामाँ[२] भी रहा है,
यह ख़ुल्दे-बशर, दोज़ख़े-इन्साँ भी रहा है,
फूलोंमें तेरे थी कभी शोलोंकी भी तासीर
ऐ जन्नते कश्मीर !

ऐ जन्नते-कश्मीर ! मुझे फिर वही डर है
इक शोला-ख़ू अफ़रीतकी[३] फिर तुझपै नज़र है,
फिर तेरी बहारोंमें वही रक़्से-शरर[४] है,
बन जाये न फिर तेग़े-ख़िज़ाँका कहीं नख़्चीर[५]
ऐ जन्नते-कश्मीर !

---

१. दु:ख-सन्तप्त; २. आफ़तोंसे घिरा; ३. आग लगानेवाले भूत की; ४. चिंगारियों का नृत्य; ५. उजाड़रूपी तलवारका घाव ।

आज़ादियाँ तेरी कहीं आमादए-रम[1] हों
ख़ुशियाँ तेरी इक दिन कहीं महबूसे-अलम[2] हों ?
तुझ पर न मुसल्लत कहीं अरबाबे-सितम[3] हों
पड़ जाए ग़ुलामीकी तेरे पाँवमें ज़ंजीर
ऐ जन्नते-कश्मीर ।

यह "सुर्ख़ सियासत" है तबाहीकी पयामी
इक दर्दे-शबो रोज़ इक आज़ारे-दवामी
ऐ ख़त्तए-आज़ाद ! कोई ताज़ा ग़ुलामी
बन जाये तेरे लोहे-मुक़द्दरकी न तहरीर
ऐ जन्नते-कश्मीर !

रहबर तेरे तुझको सरे-मंज़िल न लुटा दें,
यह तेरे मसीहा तुझे ख़ुद ही न मिटा दें,
यह अहले-हविस तुझको जहन्नुम न बना दें
बनकर न बिगड़ जाये कहीं फिर तेरी तक़दीर
ऐ जन्नते-कश्मीर !

---

१. जानेको तत्पर; २. दुःखकी बन्दनी; ३. अपनोंका ज़ुल्म प्रारम्भ ।

शहज़ोर काशमीरी

इन्तख़्वाब

ऐ मेरे दिलकी रानी ! तू रूहे-ज़िन्दगी है,
साहबाए-दिलबरीकी इक मौजे-बेख़ुदी है
जज़्बाते-आशिक़ीकी रंगीन शाइरी है,

दिल चाहता है तुझको आँखोंसे मैं लगाऊँ
और तेरे नाज़ उठाऊँ ?

लेकिन वतनपै मेरे इफ़लास है मुसल्लत
मिल्लतपै कमतरीका एहसास है मुसल्लत
यानी फ़िज़ाए-दिल पर, इक यास है, मुसल्लत,

अदबारे-क़ौमपर अब मैं अश्क़े-ग़म बहाऊँ
या तेरे नाज़ उठाऊँ ?

....

लेकिन ठहर कि लाखों बेवाएँ रो रही हैं,
और दाग़े-बेकसीको अश्कोंसे धो रही हैं,
यानी वोह ज़िन्दगीसे बेज़ार हो रही हैं,

इस वक़्त जाके उनके आँसू मैं पूछ आऊँ
या तेरे नाज़ उठाऊँ ?

....

लेकिन ग़रीब मुझको हसरतसे तक रहे हैं,
और भूककी तपिशसे दिल उनके पक रहे हैं,
यानी दिलोंमें उनके अख़गर दहक रहे हैं,
तू ही बता मैं उनकी इस आगको बुझाऊँ
या तेरे नाज़ उठाऊँ ?

—शाइर सालनामा १९५०

क़मर मुरादाबादी

यह मुक़ामे-ज़िन्दगी भी बड़ा इबरत आफ़रीं है,
जहाँ शमअ् जल रही है, वहीं रोशनी नहीं है,
मेरी ज़िन्दगीमें तुम हो, मुझे कोई ग़म नहीं है,
मेरी सुबह भी हसीं हैं, मेरी शाम भी हसीं हैं,
वही हरम[1] हो या कलीसा[2] कोई मौतबर[3] नहीं है,
जहाँ क़ल्ब[4] मुतमइन[5] हो, वही मंज़िले यक़ीं है,
जो नज़र-नज़र गराँ[6] है जो नफ़स-नफ़स[7] हज़ीं[8] है,
वही आ़र्ज़ू[9] जवाँ है, वही ज़िन्दगी हसीं है,
यह तिलस्मे-रंगो-बू है तू यहाँ न ढूँढ उनको
वह जहाँ नज़र पड़े थे यह मुक़ाम वह नहीं है,
तेरी बज़्मे-नाज़में[10] हो जिसे इज़्ने-बारयाबी[11]
वह ख़ता भी दिल कुशा है, वह गुनाह भी हसीं है,

---

१. मस्जिद; २. गिरजा; ३. विश्वस्त; ४. हृदय; ५. आश्वस्त, सन्तुष्ट; ६. भारी, मँहगा; ७. स्वांस; ८. चिन्तित; ९. इच्छा; १०. प्रेयसी की महफ़िल में; ११. उपस्थित रहनेका सौभाग्य।

मेरे अश्क क्यों उठायें तेरे दामनोंके एहसाँ
अभी अपना पैरहन[1] है, अभी अपनी आस्तीं है,
मेरे ज़ौक़े-जुस्तजूकी[2] है तुझीको शर्म रखना
मेरे साथ बेख़ुदी है कोई कारवाँ नहीं है,
मेरी ज़िन्दगी चमन है मैं चमनकी ज़िन्दगी हूँ
मुझे फ़िक्रे-गुलसिताँ है ग़मे-आशियाँ नहीं है।

—आजकल सितम्बर १९५६

१. वस्त्र; २. तलाशके शौक़की।

नवीन चेतना

मंशाउलरहमान 'मन्शा'–

मौज़ूआते-सुख़न

इस आस्माँकी न इस कहकशाँकी[1] बात करें
गुज़र है अपनी जहाँ, हम वहाँ की बात करें
हमारे ख़ूने-जिगरसे है जिसका जोशे-नमूँ
उसी चमनकी बहारो-ख़िज़ाँकी बात करें
शरूरे-फ़िक्रो-नज़र जब हमें मयस्सर है
यक़ींको[2] छोड़के फिर क्यों गुमाँकी[3] बात करें ?
अभी तलक तो हुआ ज़िक्रे-जामो-बादये[4]-नाब
अब आदमीकी दिले-ख़ूँ-चुकाँकी बात करें
ग़मे-हयातके मारोंपै रहम खा-खाकर
हयातके सितमे-बे-अमाँकी बात करें
ज़रा हमारे यह शामो-सहर सँवर जायें
तो हम भी ज़ुल्फ़ो-रुख़े महवशाँकी[5] बात करें
सुनें तो सिर्फ़ मुहब्बतके क़िस्सा हाये-दराज़[6]
करें तो सिर्फ़ ग़मे-जाविदाँकी[7] बात करें

---

१. आकाश-गंगा, छाया-पथ; २. विश्वास, धारणाको; ३. वहम, शक, सन्देह; ४. मदिराकी चर्चा; ५. प्रेयसीके कपोलों और ज़ुल्फ़ोंकी; ६. लम्बे किस्से; ७. स्थायी दुःखको।

वफ़ूरे-जोशे-जुनूँकी[1] जभी है बात कि हम
फ़राज़दारसे[2] इज़्मे-ज़बाँकी[3] बात करें
हयाते-नौका[4] तक़ाज़ा भी है, शही 'मंशा'
हम आफ़तोंमें भी ताबो-तवाँकी[5] बात करें

—आजकल नवम्बर १९५४

सग़ीर अहमद सूफ़ी—

क्यों सई-ए-ग़मे-अनुजाममें[6] दिन-रात गुज़ारो
अब जाम[7] उठाओ ग़मे-ऐयामके[8] मारो
मुमकिन है, यही दर्द, मदावाए-अलम[9] हो
क्यों, चारागरे-दर्दे-मुहब्बतको[10] पुकारो
इस मेम्बरो-महराबमें[11] इक उम्र गँवाई
वाइज़ ! कभी मैख़ानेमें इक शाम गुज़ारो

—आजकल सितम्बर १९५४

सिकन्दरअली 'वज्द'—

मुसकाओ ख़ुशीकी बात करो
रोनेवालो हँसीकी बात करो

---

१. उत्साह-लगनकी अधिकताकी; २-३. केवल कर्तव्यकी बातें न बनावें, कर्तव्य पालें। ४. नवयुगका सन्देश; ५. हिम्मत; सब्रोक़रारकी, सहनशीलताकी। ६. मुसीबतोंके परिणामोंकी चिन्तामें; ७. मदिरा-पात्र (क़दम बढ़ाओ); ८. दुर्दिनोंके; ९. दुःखका इलाज; १०. प्रेम-व्यथाके चिकित्सकको; ११. मस्जिदों और भाषणोंमें।

ख़ूँ फ़शाँ[1] मौत आयगी इक दिन
गुलफ़शाँ[2] ज़िन्दगीकी बात करो
अहले-महफ़िल उदास बैठे हैं,
अब कोई दिल लगीकी बात करो
यह अँधेरेके तज़करे[3] कब तक ?
दोस्तो ! रोशनीकी बात करो,
बात जब है कि दुश्मनोंसे भी
जब करो दोस्तीकी बात करो
फूल मुर्झा गये तो क्या ग़म है,
खिलनेवाली कलीकी बात करो
कलकी बातें करेंगे कलवाले
'वज्द' तुम आज ही की बात करो

—आजकल १९५४

फ़ज़ा इब्न फ़ैज़ी—

हमारे शाइर और मुशाअ़रे

वह बरपा[4] हुई हालमें अंजुमन[5]
हुए जमअ़ अरबाबे-शेरो-सुख़न[6]
ग़ज़ल-दर-ग़ज़ल गुनगुनाने लगे
समाअ़तको नशअ़ पिलाने लगे
वह इक़ तान खींची समाँ बँध गया
फ़ज़ाओंमें घुँघरू-सा बजने लगा

---

१. ख़ूनमें लिथड़ी; २. फूल जैसी मुसकानवाली; ३. वर्णन, वार्त्तालाप; ४. प्रारम्भ; ५. सभा, मुशाअ़रा; ६. शाइर और शाइरीके शौक़ीन ।

सुना था कि 'नाहीद' ग़श खा गई
सरे-चर्ख़ '.जुहरा' भी चकरा गई

न जिद्दत न नुदरत कोई सोच में
मगर लहजा डूबा हुआ लोच में

नहीं उनकी महफ़िलमें महवे-सरूद[1]
वह फ़न[2] जिससे कारे-जहाँकी कुशूद[3]

यह उलझे हैं .जुल्फ़ोंकी हे चाक़[4] में
यह गौहर[5] हैं ग़ल्तीदा[6] किस ख़ाकमें

निगाहोंके बिस्मिल अदाओंके सैद[7]
यह सूरज हैं अपनी ही किरनोंमें क़ैद

....

नज़रमें अँधेरा इरादों पै ज़ंग
दबी-सी दिले-मुज़तरबमें[8] उमंग

निगाहोंमें बेचारगीका[9] ख़ुमार[10]
तफ़क्कुरमें[11] छाया हुआ इक ग़ुबार[12]

जबीनोंपै यासो-जुनूँकी शिकन[13]
उजाले पै तीराशबी[14] ख़न्दाज़न[15]

....

१. लीन होने वाला आकर्षण; २. कला, हुनर; ३. संसारको सफलता मिले; ४. पेचो-ख़ममें; ५. मोती; ६. फँसे हुए—पड़े हुए; ७. शिकार, ८. तड़पते हुए दिलमें; ९. अकर्मण्यता, असहाय स्थितिका १०. नशेका उतार; ११. सोचनेमें, चिन्तनमें, १२. गर्दा; १३. माथों पै; निराशा, उन्मादके बल; १४. अँधेरी रात, १५. व्यंग्य हँसी, हँसती हुई।

यह गुल[1] नाशनासोंकी[2] तहसीनका[3]
है इक मरहला[4] झूठी तस्कीनका[5]
न पूछो कि हैं किन सुराबोंमें[6] गुम
यह दरिया हैं अपने हुबाबोंमें[7] गुम[8]

—आजकल १९५४

मग़ीसुद्दीन फ़रीदी—

फ़न और फ़नकार

अफ़सानए - हक़ीक़ते - हस्ती[9] सुनाइए
पैमाना तोड़ दीजिए, खंजर उठाइए
जो वक़्तकी सदा हो ग़ज़ल ऐसी गाइए
राहे-तलबमें[10] शम-ए-तमन्ना[11] जलाइए
अफ़कारे-नौसे[12] ब,ज़्मे-अदब[13] जगमगाइए
त,र्ज़े-क़दीम[14] शेरो-सुखनको मिटाइए

फ़िक्रे - ,फ़लकरसाके[15] तमाशे दिखा चुके
अफ़साने हिज्रो-वस्लके लाखों सुना चुके
,ज़ाहिदसे छेड़ कर चुके क़शक़ा लगा चुके
हूरो - क़सूरो - कौसरो - तस्नीम पा चुके
अब ,फ़न्ने-शाइरीपै ,ज़रा रहम खाइए
बस हो चुकी नमाज़ मुसल्ला उठाइए

---

१. शोर-गुल; २; शाइरीसे अनभिज्ञ श्रोताओंकी; ३. शाबाशीका; ४. उपाय; ५. आत्मसंन्तोषका; ६. मृगमरीचिकाओं में; ७. पानीके बुल-बुलोंमें; ८. खोये हुए; ९. जीवनकी वास्तविकता; १०. जीवन-पथमें; ११. महत्त्वाकांक्षाओंके दीप; १२. नवसन्देशसे; १३. साहित्य, शाइरीको; १४. प्राचीन शाइरीके ढंगको; १५. आसमानी कल्पनाओंके ।

अब बर्क़से[1] भी तेज़ ज़मानेकी चाल है,
जो रुक गया यहाँ पै वही पायमाल[2] है,
यह कहके "ज़िन्दगीको समझना महाल[3] है"
"आलम तमाम हल्क़ये-दामे-ख़याल[4] है"
साग़रमें भरके ख़ूने-जिगर मुसकराइए
माँगे जो मौत उसको भी जीना सिखाइए

इशरतका ज़िन्दगीमें न हो शाइबा[5] कहीं,
और हो ज़बाँ पै ज़मज़म-ए-जामे-अंगबीं[6]
दिल शादमाँ हो लबपै हो इक आहे-आतशीं[7]
फ़नमें ख़लूसे-क़ल्ब नहीं है तो कुछ नहीं[8]
अल्फ़ाज़के तिलस्मसे हमको बचाइए
जो दिलपै बीत जाए वही लबपै लाइए

---

१. बिजलीसे; २. बर्बाद; ३. कठिन; ४. यह ग़ालिबका मिसरा उद्धृत किया गया है, जिसका भाव यह है, कि यह समस्त संसार कल्पनाओंका जाल है; ५. भोग-विलास जीवनमें लेशमात्र प्राप्त नहीं हुआ; ६. किन्तु शाइरकी ज़बाँपर शराबो-शहदके नग़मे थिरक रहे हैं; ७. अथवा जो शाइर भोग-विलासमें डूबे रहे, ग़ज़लकी परम्पराके अनुसार उन्होंने भी दुःख व्यथा की शाइरीकी; ८. जो शाइरी अनुभूत नहीं, वह शाइरी व्यर्थ है।

कब तक शफ़क़[1], शगूफ़े[2], शबिस्ताँ[3] शरावे-नाब[4],
कब तक बहारो-बुलबुलो-गुल, बरबतो-रुबाव[5]
कब तक 'ख़रामे-साक़ी[6]'-ओ 'ज़ौक़े-सदा[7]'के ख़्वाब
वह देखिए उफ़क़से[8] उभरता है, आफ़ताब[9]
अब ख़ुल्दसे[10] निकलके ज़मींपर भी आइए
आईनये-हयात[11] अदबको[12] बनाइए

मुद्दतसे लिख रहे हैं, सारापा-ए-दिलरुबा[13]
अब तक मगर तआर्रुफ़े-जानाँ[14] न हो सका
सूरतमें रश्के-हूर, दहनका[15] नहीं पता
सीरत जफ़ा शआर[16], सितमपेशा[17] कजअदा[18]
अब यह नक़ाब चहरए-ज़ेबा उठाइए
इन्सान बनके देखिए इन्साँ बनाइए

---

१. उषा; २. फूल; उपवन; ३. शयनागार; अन्तःपुर; ४. मदिरा; ५. वाद्य; ६. प्रेयसीकी चाल; ७. मधुर आवाज़के; ८. आकाशसे; ९. सूर्य; १०. जन्नतसे; ११. जीवन-दर्पण; १२. साहित्यको; १३. नख-सिख-वर्णन; १४. फिर भी प्रेयसीसे सम्बन्ध न हो सका; १५. प्रेयसीकी रूप-गरिमाका बखान करते हुए कहा जाता है कि उसके सौन्दर्य्यपर देवाङ्गनाओंको भी ईर्ष्या होती है। मगर जब नज़ाकतका वर्णन होता है, तो कहा जाता है कि उसके दहन और कमर इतने सूक्ष्म हैं, कि दिखाई नहीं देते; १६-१७-१८ माशूक़को अत्याचारी स्वभाववाला, ज़ालिम और बाँका-तिरछा भी बताया जाता है।

अब ऐ अदब नवाज़[1]! फ़सानेके दिन गये
पीकर, शराब रक़्समें[2] आनेके दिन गये
कहता है वक़्त, सोने-सुलानेके दिन गये
अपना जनाज़ा आप उठानेके दिन गये
ऐसावको[3] झिंझोड़िए, दिलको जगाइए
ख़ूने-जिगर शराबके बदले पिलाइए

वह शेर चाहिए जो हो तफ़सीरे-कायनात[4]
तनक़ीदे ज़िन्दगी[5] हो तो ताबीरे-कायनात[6]
एक-एक लफ़्ज़ जिसका हो तक़दीरे-कायनात[7]
बढ़ जाये जिससे और भी तनवीरे-कायनात[8]
इस तरहसे उरूसे-सुख़नको[9] सजाइए
जब देखिए तो एक नया रंग पाइए

—आजकल मई १९५४

---

१. साहित्य-सेवी; २. थिरकनेके; ३. इन्द्रियोंको; ४. जीवन-भाष्य; ५. जीवन-आलोचना; ६. संसारका भविष्य बताने वाली; ७. संसारका भाग्यनिर्माण करने वाला; ८. विश्वकी रौनक़, चमक; ९. शाइरी रूपी दुल्हनको।

'फ़ज़ा' इब्न फ़ैज़ी—

नक़्शे-दौराँ

मैंने सन्दल[1]-सी जबीनोंको[2] भी देखा है, मलूल[3]
मैंने देखी है हसीं ज़ुल्फ़ों पै इफ़लास[4] की धूल
मैंने कुम्हलाये हुए देखे हैं, आरिज़ाके[5] गुलाब
नज़र आये हैं, मुझे ज़र्द[6] यतीमोंके[7] शबाब[8]
मैंने देखी है ज़मीरोंमें[9] गुनाहोंकी[10] ख़राश[11]
वे कफ़न मुझको नज़र आई है इन्सान्की लाश
मैंने तहज़ीबो-क़याद्तका[12] फ़सूँ[13] देखा है
मैंने पैमानोंमें[14] अक़वामका[15] ख़ूँ देखा है
मैंने देखा है कलीसाओंको[16] फ़ित्ना[17] बनते
क़तरए-आबको[18] देखा है तलातुम[19] बनते
मैंने देखा है, हक़ीक़तको[20] सराबोंमें[21] असीर[22]
हैं मेरे सामने बेपर्दा मज़ाहबके[23] ज़मीर
मेरी आँखोंमें बहारे हैं ख़िज़ासे भी ज़लील[24]
मैंने देखा है गुलो-लालाकी फ़ितरतको अलील[25]

---

१. चन्दन-सी; २. मस्तकोंको; ३. ग़मग़ीन; ४. ग़रीबीकी; ५. कपोलोंके; ६. पीले; ७. अनाथोंके; ८. यौवन; ९. दिलोंमें; १०. अपराधोंकी; ११. फाँस; १२. सभ्यताका; १३. जादू; १४. मद्य-पात्रोंमें; १५. जनताका; १६. गिरजाघरों (मज़हबी उपासना-गृहों) को; १७. फ़िसादी; १८. पानीकी बूँदको; १९. बाढ़; २०, २१—२२. सत्यको मृग-मरीचिकामें क़ैद; २३. मज़हबोंके नग्न दिल; २४. तुच्छ; २५. रोगी।

मैंने चहरों पै यहाँ मौतके ग़ाज़े[1] देखे
शाह फ़ारूक़की दौलतके जनाज़े देखे
मैंने ईरानमें देखा है, मुसद्दक़का मआल[2]
मैंने हर बद्रको[3] बनते हुए देखा है, हिलाल[4]
मैंने देखे हैं, छुपे कितने लिबासोंमें जुज़ाम[5]
मुझको शहरोंमें नज़र आये हैं ख़ुशपोश ग़ुलाम
ख़ूने-नादारको[6] बनते हुए देखा है, शराब
मैंने नासूरोंपै[7] देखे हैं, इमारतके नक़ाब[8]
अद्‌लके[9] रूपमें बेदादके[10] बुत[11] देखे हैं,
मैंने यह खेल तमद्दुनके[12] बहुत खेले हैं

—निगार मई १९५४

'सआदत' नज़ीर—

कभी तीसरी जंग होने न दें हम

३० में-से ६ शेर

मेरे साथ आओ, मेरे साथ आओ !
किसानोंके जरगेको भी साथ लाओ !
सकूँ ख़्वाह इन्साँकी हिम्मत बढ़ाओ !!
लड़ाईके शोलोंको मलकर बुझादो !
ग़ुलामाने-ज़रको जहाँसे मिटादो !

---

१. पाउडर; २. हाल; ३. पूर्णिमाके चाँदको; ४. द्वितीयाका चाँद; ५. कोढ़; ६. ग़रीबके ख़ूनको; ७. वह ज़ख्म जो कभी भरा न जा सके; सदैव रिसता रहे; ८. पर्दे; तह; ९. न्याय, इन्साफ़के; १०. अत्याचारके; ११. मूर्तियाँ; १२. संस्कृति, सभ्यताके।

यह शोले वतनमें भड़कने न पायें !
मुनासिब यही है, कि उनको दबायें !!
कभी तीसरी जंग होने न दें हम !
उसे रोक देनेको आओ बढ़ें हम !!
इटामिक अनर्जीको बरबाद कर दें ।
ज़मानेको इस ग़मसे आज़ाद कर दें !!

—शाइर सितम्बर १९५१

अरशद फ़ह्मी अज़ीमाबादी—

सपनोंका महल

धूलमें लोटती दोशीज़गी खिल उठेगी
और रोटीके लिए, अब न बिकेगी इस्मत
ग़मका एहसास मसर्रतसे बदल जायेगा
ज़ेरे-गर दूँ नज़र आयेगी ख़ुशीकी जन्नत

फिर मेरे ख़्वाबोंकी ताबीर ग़लत निकली है,
सुन रहा हूँ अभी मजरूह दिलोंकी आहें
बेवगी आज भी रोटीके लिए बिकती है,
बन्द हैं, आज भी सब अम्नो-सकूँ की राहें,

शाख़े-गुलमें हैं, अभी लिपटे हुए मारे-सियाह
अपने माहौलसे जी छूट रहा है ऐ दोस्त !
जलजला-सा मेरे एहसासमें जाग उट्ठा है,
अपने सपनोंका महल टूट रहा है, ऐ दोस्त !

—शाइर दिसम्बर १९५६

'निसार' इटावी—

वही हक़दार हैं, किनारोंके
जो बदल दें बहाव धारों के
दोशे-हर शाख़े-गुल पै लाशा है,
क्या यही रंग हैं बहारोंके ?
ऐ अमीराने-कारवाँ हुशयार
कोई पर्देमें है, ग़ुबारोंके

—शाइर नवम्बर १९५१

'फ़ज़ा' इब्न फ़ैज़ी—

आदमी बनो

ऐ कायनाते आदमो-हव्वाके वारिसो !
मेरे हरम नशीनो, मेरे सोमनातियो !
तीरा-ज़मीरो ! कमनज़रो, पस्त हिम्मतो !
दूँ ज़र्फ़ो ! हरजः कोशो ! ग़लत बीनो ! कजरवो !
सोज़े-रूहसे महरूम पैकरो !

पशमीना-पोशो ! ख़िरका-बदोशो ! लँगोटियो !
कुम्हलाये फूलो ! ख़ूँशुदा कलियो ! ख़िज़ाँज़दो !
सुलगे दरख़्तो ! झुलसे वनों ! सूखी टहनियों !
ऐ शोर ज़ारो ! जुहलके गुनजान जंगलो !
नोकीले काँटों ! सूखी बबूलोंकी झाड़ियो !
असियान्के थपेड़ो ! तबाहीकी आँधियो !

ऐ जुहलके सतूनो ! हलाकतकी सीढियो !
तजर्वीरके मिनारो ! सख़ाफ़तके गुम्बिदो !
ऐ मलजहीके महलो ! रज़ालतकी कोठियो !

गहनाये-माहताबो ! अँधेरी उजालियो !
ज़ुल्मत फ़िशाँ सवेरो ! सियह काम सूरजो !
ऐ जंगखुरदः आइनो ! कजलाये गौहरो !

मुज़्लम सितारो ! तीरः शुआओंके काफ़िलो !

दहके तनूरो ! गर्म शरारोंके ख़िरमनो !
बिजलीकी लहरो ! आतिशो-आहनकी मनक़लो !
दीवाने कुत्तो ! मस्तो-ग़ज़ब नाक अज़दहो !
ऐ मुर्दाख़ोर करगसो ! ख़ूंख्वार भेड़ियो !

लालचके बन्दो ! दौलतो-ज़रके पुजारियो !
ओबाशो ! शोरःपुश्तो ! सपेरे मदारियो !
बुर्दा-फरोशो ! इस्मतो-ईमाँके ताजरो !
ज़रके ग़ुलामो ! फ़ासक़ो ! बेदीनो ! फ़ाजरो !

ऐ नफ़्सके मुरीदो ! गुनहगार सूफ़ियो !
बहरूपियो ! शरीफ़ कमीनो ! कबाड़ियो !
सदियोंकी अहमक़ाना रवायतके हामियो !
मुरदा ख़लीफ़ो ! झूठे इमामों ! फरेबियो !

क़म्मारबाज़ो ! मसख़रो ! नक़्क़ालो सोफ़ियो !
अफ़यूनख़ोरो ! भंगड़ो ! पागल शराबियो !
बनमानसो ! उक़ाबो ! लकड़बग्घो ! गीदड़ो !
इन्सानियतके क़ातिलो ! ख़ूँख़्वार वहशियो !

ऐ ग़फ़लतोंके लुक़मो ! तआस्सुबके ईंधनो !
ऐ नफ़रतो नफ़ाक़के मज़बूत बन्धनो !
ख़िरमेकी सूखी गुठलियो ! बेमाया कंकरो !
मकड़ीके जालो ! बहरके कमज़ोर बुलबुलो !

ऐ मौतके फ़रिश्तो ! हलाकतके क़ासिदो !
चंगेज़के भतीजो ! हलाकूके साथियो !
ऐ होशयार गिद्धो ! पढ़े लिक्खे जाहिलो !
फ़नकारो-सरकशीके ! समझदार अहमक़ो !

ऐ भटके देवताओ ! रसूलो ! पयम्बरो !
ऐ झूठे ऋषियो ! रास्ता भूले मुसाफ़िरो !

ऐ शूद्रो ! मलकशो ! अछूतो ! हरीजनो !
ऐ वैश्यो ! और क्षत्रियो ! ऐ बरहमनो !
सद्दीक़ियो ! क़ुरैशो ! अफ़ग़ानो ! सैयदो !
ऐ रास्तबाज़ झूटो ! निरे अहमक़ो सुनो !

सब कुछ तो बन चुके हो ज़रा आदमी बनो
सतहे-ज़मीपै नक़्शे-ग़रे-ज़िन्दगी बनो
मंशा हयाते-वक़्तका भूले हुए हो तुम
मुट्ठीमें आफ़ताब लिये सो रहे हो तुम

—शाइर अगस्त १९५१

प्रो० शम्स शैदाई सहसवानी—

अँधेरी दुनिया

है इन्साँकी मजबूरियोंकी कहानी
यह मिट्टीमें मिलती हुई नौजवानी
वोह क़ीमत नहीं जिसकी कोनों-मकाँ भी
है, पानीसे अरज़ाँ वही ज़िन्दगानी
जवानी मगर खेलती है लहूसे
लहूमें ग़ज़बकी है, शोला-फ़िशानी
ख़िरदने बुझादी मुहब्बतकी मशअ़ल
हविसकी दिलोंपर हुई हुक्मरानी
अँधेरेमें इन्सान हैराँ-ओ-शशदर
न कुछ काम आई मगर नुक़्तादानी

—निगार मई १९४५

'क़मर' हाशिमी—

ज़ाविये

भटक रहे हैं अभी कारवाँ ग़रीबीके
लरज़ रही है जबीं आस्मानो-अंजुमकी
तरस रहे हैं ख़ुशीके लिए हज़ारों दिल
अभी लबोंको इजाज़त नहीं तबस्सुमकी

अभी तो ज़ुल्मतें छाई हुई हैं गुलशनपर
अभी तो ख़ार भी फूलोंपै मुसकराते हैं
अभी चमन है, ख़रावे-जहाने-रंगो-बू
अभी तो महरका ज़र्रे भी मुँह चिढ़ाते हैं

—एशिया फ़रवरी १९४९

आविद हश्री—

सवेरे-सवेरे

ग़रीबोंकी कुटिया हो या क़िसरे-शाही
यहाँ भी धुँदलके वहाँ भी अँधेरे
यह दुनिया है याँ चैन लेने न देंगे
समाजी दरिन्दे रिवाजी लुटेरे

गुज़रने भी दे ये ग़ुवारे-मुनज़्ज़िम
निकलने भी दे ये मुसलसल अँधेरे
बड़े देर से मुन्तज़िर हैं हमारे
गुलावी उजाले शहावी सवेरे

चल अपने लिये अव नई राह ढूँढें
करें क्यों लिहाज़ो-रिवाजे ज़माना
यह दुनियाकी रस्मे न तुझसे न मुझसे
यह दुनियाके वन्धन न तेरे न मेरे

—एशिया फ़रवरी १९४९

गुलाम रब्बानी ताबाँ

दीवाली

....

मगर यह रातकी गरदनमें दीप मालाएँ,
सियाहियोंमें उजालेके बदनुमा धब्बे,
ग़रीब हब्शीको जैसे ज़ुकाम हो जाये,
वह टिमटिमाते दिये.....................
यह टिमटिमाते दिये सुबहका बदल तो नहीं

....

यह टिमटिमाते दिये लच्छमीके चरनोंमें
सभीने हुस्ने - अक़ीदतके फूल डाले हैं,
वे, जिनको लक्ष्मीदेवीसे क़र्बे-ख़ास नहीं
घरोंमें अपने भी दीपक जलाये बैठे हैं,
कि इस तरफ़ भी इनायतकी इक नज़र हो जाय
मगर वे भूलते हैं.........................
शकिस्ता झोंपड़ियों टूटे-फूटे खण्डहरोंमें
कभी भी लच्छमीदेवी न मुसकरायेगी
कभी बहार ना उनके चमनमें आयेगी
अगर वे ख़ुद ही निज़ामे-चमन न बदलेंगे
सिपाहियोंके नुमाइन्दे रातके बेटे
हमारे फ़िक्रो-तख़ैय्युलको बाँधनेके लिए
तोहम्मातकी ज़ंजीर ढाल देते हैं
कभी दिवाली, कभी शबे-रात आती है

—एशिया फ़रवरी १९४६

शफ़ीक़ जौनपुरी—

एतदाल

ताक़त हो तो मलहूज़ रहे हुस्ने-नज़र भी
फ़ौलादके बाज़ू हों तो चहरा गुलेतर भी

शेराना गरज़ चाहिए आवाज़में, लेकिन-
कुछ दर्द भी हो, सोज़ भी हो, क़ैफ़ो-असर भी

हिम्मत है जलानेकी, बुझाना भी तो सीखो
पानी भी हो, शबनम भी हो, शोला भी, शरर भी

मग़रूरकी महफ़िल हो तो मसनदको भी ठुकराओ
मज़दूरका मजमा हो तो हो शीरो-शकर भी

टूटे हुए दिल जोड़ दे अख़लाक हो ऐसा
टकराये तो फिर तोड़ दे बातिलकी कमर भी

बन्द आँखें हों ता-अर्शे-बरीं देख रहा हो
ग़ाफ़िल हो ख़ुद अपने-से ज़मानेकी ख़बर भी

सजदा करे तो ख़ाक़के ज़र्रोंपै जबीं हो
ले हाथमें परचम तो झुकें शम्सो-क़मर भी

हल्केमें लिये फिरते हों मग़रिबके गुल अन्दाम
दामनकी क़सम खाती हो हूरोंकी नज़र भी

हो तेग़-बकफ़ शोरिशे-अरबाबे-जफ़ापर
मज़लूमकी फ़रियादपै वा-दीदए-तर भी

—निगार सितम्बर १९४८

'शफ़ी' जावेद—

बातका रूप

जीवनकी फुलवारीमें जब आशाओंके फूल खिले।
मनकी बगिया महक उठी और प्रेमके पग-पग दीप जले॥
चन्दाके उजियारेमें भी डगर-डगर अँधियारा है
नगर-नगर डाकू फिरते हैं, मनमोहनका स्वाँग भरे
प्रीतकी रीत निराली है, दिल रोता है, लब सिलते हैं,
नीर बहें तो आँखें फूटें, आह करें तो सीस कटे
आँसू शबनमका हो, या आँखोंका, रहने पाता नहीं
मिट ही जाता है धरती पर जब सूरजकी जोत जगे
चुप भी रहो 'जावेद' कहाँ तक बातका रूप निखारोगे।
ज्ञानके मोती रोलके जगमें कोई कहाँ तक भूकों मरे॥

—आजकल अक्तूबर १९५३

साक़ी सद्दीक़ी—

१५ में से ७

सनमख़ानोंके दरवाज़ोंपै ताले पड़ चुके होंगे
मज़ाहब गल चुके होंगे, अक़ाइद सड़ चुके होंगे
नई रूहें, नये क़ालिब, नया मक़सद, नया मंशा
जनूने - सरफ़रोशी बाइसे - तामीरे - नौ होगा

सुलगते वलवले सीनोंसे आजायेंगे आँचलपर
बहुत कुछ सर्द जो जायेगा ब.ज्मे-ख़ासका मंज़र
चितायें मुसकरायेंगी मक़ाबर गीत गायेंगे
यह ख़्वाबगाहे गराँ-ख़्वाबी चटक कर टूट जायेंगे
मलाइककी जबीनें आदमीके पाँव चूमेंगी
हयातो - मौत दोनों एक ही महवरपै घूमेंगी
न ख़ौफ़े रहज़नी होगा, न ज़ोमे रहबरी होगा
बहुत शफ़्फ़ाफ़ लोगोंका म.ज़ाक़े-रहरवी होगा
वोह आ.ज़ादीका आलम मुतलक़न जन्नतनुमाँ होगा
फ़लक अपने फ़लक होंगे ख़ुदा अपना ख़ुदा होगा

—शाइर फ़रवरी १९४८

अहमद नदीम क़ासिमी—

७

नया साल

हज़ार बार नये सालका नया सूरज
लुटा चुका है शुआएँ महल सराओं पर
मगर बुझा-सा अभी तक है झोपड़ोंका दिया
चिमट रही है सियाही ग़रीबख़ानों पर
मैं सोचता हूँ नये साल्की नई यह शराब
कहीं न जाममें ज़र ही के ढलके रह जाये
और इस शराबके बदले निरास आँखोंमें-
हिरासो-यासका आँसू उबलके रह जाये

'आबद' सर हिन्दी–

शख़्सी हुकूमत जागीरदारी,
यह भी शिकारी, वह भीं शिकारी,
शेख़ो-बिरहमन दस्तो-गिरेबाँ
फ़ैज़े - सियासत हर सिम्त जारी
क़ैदे-ग़ुलामी रंज़े-दवामी
जीना भी मुश्किल मरना भी भारी
इन्सानियतका है, क़हत अब भी
गो बढ़ गई है, मर्दुमशुमारी
मज़हबने करके तक़सीमे-इन्साँ
दोज़ख बना दी दुनिया हमारी
अक़वामे - आलम लड़ती रहेंगी
बाक़ी है, जब तक सरमायेदारी
सज्दोंमें तेरे क्या ख़ाक असर हो
दिलमें नहीं है ईमानदारी

—शाइर जनवरी १९४८

गोपाल मित्तल–

सुर्ख़ आँधी

मिट ही जायेगी ज़ुल्मते-माहौल
मशअ़ले - इल्म जगमगायेगी
हमने देखे हैं सैकड़ों तूफ़ाँ
सुर्ख़ आँधी भी छट ही जायगी

बशीर 'बद्र'—

अज़्म

हाँ मेरे फ़र्ज़से मुझको मेरी महबूब न रोक
अभी देना है नई सुबहका पैग़ाम मुझे
पूँछले सरमगीं आँखोंसे छलकते आँसू
यह तेरे अश्क न करदें कहीं बदनाम मुझे
ऐसे पाकीज़ा अज़ाइमपै यह मातम कैसा
मुसकराहटकी ज़रूरत है, बहरगाम मुझे

....

ज़हने-इन्सानीको पैहम जो डसे जाते,
ख़त्म करने हैं, ख़ुदाओंके वह ओहाम मुझे,
जो ग़रीबोंके लहू पीके हुए सर-ब-फ़लक
वही ढाने हैं, शहंशाहोंके अहराम मुझे
मुफ़लिसोंकी नई दुनियाको बनानेके लिए
क़िस्ते-शाहीके गिराने हैं, दरो-बाम मुझे
अब यह अफ़सुर्दा हसीं चेहरे लहक उट्ठेंगे
अब तो लानी है नई सुबह, नई शाम, मुझे

....

मेरे एहसासमें जागी है, बग़ावतकी तड़प
दे बग़ावतका मेरी आज तू इनआम मुझे
हाँ मेरे फ़र्ज़से मुझको मेरी महबूब न रोक
अभी देना है, नई सुबहका पैग़ाम मुझे

●

बज़्मे-अदब

बज़्मे-अदबके[1] इस सालाना जल्सेमें शिरकत फ़र्मानेके लिए हिन्दोस्तान और पाकिस्तानके हर अक़ीदे[2], हर ख़याल और हर उम्रके शुअ़रा तशरीफ़ लाये हैं। बज़्मे-अदबकी यह ख़ुशक़िस्मती है कि बग़ैर किसी भेद-भावके मुतज़ाद ख़यालात[3] रखते हुए सभी हज़रात पहलू-ब-पहलू घुले-मिले बैठे हुए बड़े-छोटे सब मुहब्बतो-इख़लासके साथ महवे-गुफ़्तगू[4] हैं। यहाँ दौरे-जदीदके[5] तरक़्क़ीपसन्द[6], ग़ैर तरक़्क़ीपसन्द, इन्क़लाबी[7], वतनपरस्त, दौरे-माज़ीके मौतक़िद[8], कम्युनिस्ट, कॉंग्रेसी, मुस्लिमलीगी वग़ैरह सभी क़िस्मके शुअ़रा जल्वा-फ़र्मा[9] हैं। कुछ बुज़ुर्ग हज़रात उस्तादीका मर्तबा रखते हैं, कुछ साहब साहिबे-दीवान हैं। कुछ नौजवान शुअ़रा आस्माने-शाइरीपर चमक रहे हैं, तो चन्द ऐसे गुञ्चे भी हैं जो बहुत जल्द गुलशने-अदबकी ज़ीनत बननेवाले हैं। वह ज़माना लद गया जब शुरूमें छोटे और बादमें बड़े शाइर पढ़ते थे। आज हरुफ़ब्बार मुशाअ़रा जारी रहेगा। हो सकता है उस्तादके बाद शागिर्दके पढ़नेका नम्बर आ जाये।

लीजिए मुशाअ़रा शुरू हो रहा है। 'पसन्द अपनी-अपनी समझ अपनी-अपनी' के मुताबिक़ किसीके कलामसे आप लुत्फ़अन्दोज़[10] होंगे, किसीपर चीं-ब-जबीं[11] होंगे। मगर दौरे-जदीदकी शाइरीने क्या मोड़ लिया है, उसके लबो-लहजेमें क्या तब्दीलियाँ हुई हैं, वह कहाँसे कहाँ पहुँच रही है, यह समझनेकी भी तकलीफ़ गवारा कीजिए। ज़रूरत महसूस हुई तो किसी दूसरे जल्सेमें हम भी रोशनी डालनेकी कोशिश करेंगे।

२८ मार्च १९५८]

---

१. साहित्यिक समारोह, २. विश्वासके, ३. भिन्न-भिन्न विचारवाले, ४. वार्तालापमें मग्न, ५. वर्तमान युगके, ६. प्रगतिशील, ७. परिवर्तनवादी, ८. पुरातनवादी, ९. विद्यमान, १०. प्रफुल्लित, ११. त्योरियाँ चढ़ाएँगे।

'अंजुम' आज़मी

मिलता नहीं सकून तो मिट जाइए मगर,
छुपकर अब इज़्तराबमें रोया न कीजिए ॥
हो जाइए जलील ख़ुद अपनी निगाहमें ।
इतना कभी दमाग़को ऊँचा न कीजिए ॥

—आजकल मार्च १९५३

'अंजुम' फ़ौक़ी बदायूनी

महसूसात

तुम्हारे नाज़ किसी औरसे तो क्या उठते
ख़ता मुआफ़ यह पापड़ हमींने वेले हैं

—शाइर मार्च-अप्रैल १९४८

तलबकी राहमें ऐसा भी इक हंगाम[1] आता है,
जहाँ रहबर[2] नहीं ऐ दोस्त ! रहज़न[3] काम आता है
जहाने-रंगो-बूमें फूल भी मिलते हैं, काँटे भी
सवाल इस बातका है, कौन किसके काम आता है ?

तुमने फूलोंको नवाज़ा,[4] मैंने काँटोंको चुना
ग़ालबन[5] दोनों-ही थे ना-आश्ना[6] अंजामसे

---

१. समय, वक्त, दौर, २. पथ-प्रदर्शक, ३. मार्गमें लूटनेवाला, ४. चाहा, ५. सम्भवतः, शायद, ६. अपरिचित ।

तबाह किसने किया, अहले-ग़मपै क्या गुज़री ?
जो सुन सको तो सुनायें कि हमपै क्या गुज़री ?
किसीकी अंजुमने-नाज़ तक[1] चले तो गये
फिर इसके बाद न पूछो कि हम पै क्या गुज़री

आप क्यों इस अदासे हों बदनाम
ग़ैर क्या कम हैं, मुसकरानेको

दिलको तोड़ा है, तो साज़े-ज़िन्दगी भी फूँक दो
हो सके तो इतनी ज़हमत[2] और भी मेरे लिए

जल्वए-हुस्नसे[3] रोशन न हुई बज़्मे-हयात[4]
इसलिए ख़ून जलाया गया परवानेका

छलका था मेरे वास्ते पैमानए-जमाल[5]
थोड़ा-सा कैफ़ चाँद सितारे भी पा गये

यह कौन-सा मुक़ामे-तलब है ? कि तुम बग़ैर
पहिले तो कुछ मलाल था, अब कोई ग़म नहीं

वोह मेरे वास्ते आँसू बहायें
कहीं सचमुच यह दिन भी आ न जायें
नहीं तख़सीस[6] महफ़िलमें किसीकी
मगर ताक़ीद है, 'अंजुमन' न आयें

---

१. प्रेयसीकी महफ़िल, २. तकलीफ़, ३. सौन्दर्य-प्रकाशसे, ४. जीवन-सभा, ५. सौन्दर्यका मदिरा-पात्र, ६. रोक-टोक ।

यक़ीनन कोई राज़ है, इसमें 'अंजुम' !
जो उनकी तरफ़ आप कम देखते हैं

अब उस मुक़ामे-तवज्जहपै है तग़ाफ़ुले-दोस्त
ज़रूरतन भी जहाँ कोई लब हिला न सके

मेरी सूरतमें कोई और सही मैं न सही
अपनी तसवीरमें तुमने भी किसीको देखा ?

बलाएँ तो अज़लसे ख़ाना-ज़ादे-इश्क़ थीं लेकिन—
बहारोंके लिए शाख़े-नशेमन छोड़ दी मैंने

जहाने-ख़ैरो-शरमें जाने किस शैकी ज़रूरत हो—
सुकूने-दिलसे पहिले इक ख़लिश भी माँग ली हमने

यह समझलें मुझे बेगाना समझने वाले
लाला-ओ-गुल ही नहीं ख़ार भी काम आते हैं

इश्क़का आलम क्या कहिए
जैसे कोई नींदमें हो

—निगार मई १९५४

'अंजुम' रिज़वानी

होते हैं बड़े क़िस्मतके धनी जो यह सद्मे सह जाते हैं
तूफ़ाने-हवादिसमें वरना अच्छे-अच्छे बह जाते हैं

अंजुम 'शफ़ीक़'

ज़मींको आसमाँ समझे हुए हैं
कहाँ हैं, और क्या समझे हुए हैं
लताफ़त है बहुत कुछ ज़िन्दगीमें,
मगर बारे-गिराँ समझे हुए हैं
नये सैय्यादको ग़द्दारे-गुलशन
अ़जब क्या, बाग़बाँ समझे हुए हैं
ज़रा-से आबो-दानेकी हविसमें
क़फ़सको आशियाँ समझे हुए हैं
शराबे-ज़हर - आलूदाको नादाँ
शराबे-अर्ग़वाँ समझे हुए हैं
लुटेरे रहनुमाओंसे ज़ियादा
मिज़ाजे-कारवाँ समझे हुए हैं
हमें आदाबे-महफ़िल है, गवारा
वह हमको बेज़बाँ समझे हुए हैं
तअ़ज्जुब है ग़ज़ल गोईको अब तक
वह अन्दाज़े-बयाँ समझे हुए हैं

—तहरीक नवम्बर १९५४

अकरम धौलपुरी

छुट गया जिसमें हौसला दिलका
आख़िर मरहला था मंज़िलका।

आँखों-आँखोंकी छेड़ थी लेकिन—
सिल्सिला दिलसे मिल गया दिलका
तुझको आना पड़े न मजबूरन
इन्तिहा कर न ज़ज़्बए - दिलका
मुश्किलोंसे हिरास क्या मानी
सामना कर हरेक मुश्किलका

—शाइर जून १९५१

तमन्नामें, उदासीमें, ख़ुशीमें, ग़ममें गुज़री है।
हयाते-इश्क़[1] हरदम इक नये आलममें गुज़री है॥

नहीं मिन्नत-कशे-लफ़्ज़ो-बयाँ रूदादे-दिल[2] अपनी।
किसीसे क्या कहें जो कुछ किसीके ग़ममें गुज़री है॥

तरीक़े-ज़िन्दगीके पेचो-ख़म हमसे कोई पूछे।
कि हर साइत[3] हमारी काविशे-पैहममें[4] गुज़री है॥

ख़िज़ाँका रंज ही कैसा, गिला है फ़स्ले-गुलसे भी।
कि हमपर इक नई उफ़ताद[5] हर मौसममें गुज़री है॥

निशातो-ऐश[6] ही को हम समझलें ज़िन्दगी क्योंकर?
है आख़िर ज़िन्दगी वोह भी जो रंजो ग़ममें गुज़री है॥

—निगार मार्च १९५३

१. प्रेमकी ज़िन्दगी, २. हाले-दिलके लिए शब्दों और वाक्योंकी तलाश ज़रूरी नहीं, ३. घड़ी, पल, ४. लगातार परेशानियोंमें, ५. मुसीबत, ६. भोग-विलासको।

जोशे-दिल वक़्तके धारेको बदल सकता है,
आदमी ग़मके तलातुमसे[1] निकल सकता है
जज़्बे-उल्फ़तकी[2] क़सम, सोज़े-मुहब्बतकी[3] क़सम
हुस्न भी इश्क़के अन्दाज़में ढल सकता है,
आफ़त ऐसी नहीं कोई जो मुसल्लत[4] ही रहे
शौक़ महकम[5] हो तो तूफ़ान भी टल सकता है
अज़्मे-रासिख़की[6] ज़रूरत है, रहे-हस्तीमें[7]
ठोकरें खाके भी इन्सान सम्हल सकता है,
पाए-हिम्मतको[8] जो हो जाय ज़रा-सी लग़्ज़िस[9]
हाथसे गौहरे-मक़्सूद[10] निकल सकता है,
अक़्ल पर है, उसी ग़ायतसे जुनूँको तरजीह[11]
वक़्त आ जाये तो काँटोंपै भी चल सकता है,
अम्ने-आलमसे है, आलमकी हयात-अफ़रोज़ी[12]
नूरसे नूरका चश्मा ही उबल सकता है,
मंज़िले-मक़्सदे-जावेद नहीं मिल सकती[13]
काम ताक़तसे निकलनेको निकल सकता है,

---

१. भँवरसे, २. प्रेम-भावनाकी, ३. प्रेमाग्निकी, ४. स्थायी, अधिकार किये रहे, ५. मज़बूत इरादा, ६. दृढ उद्देश्य, पक्के विचारोंकी, ७. जीवन-पथमें, ८. हिम्मतके क़दमोंमें, ९. कंपन, १०. अभिलषित वस्तु, ११. अक़्लसे दीवानेपनको श्रेष्ठता इसीलिए प्राप्त है कि वह वक़्त पड़ने पर काँटोंमें भी चला जा सकता है। अक़्लकी तरह सोचमें नहीं पड़ता। १२. युद्धोंसे रहित संसारकी शान्तिसे ही विश्वमें शान्ति रह सकती है। क्योंकि दीपक-से-दीपक जलाया जाता है, १३. वास्तविक उद्देश्यका स्थायी केन्द्र प्राप्त नहीं हो सकता—भले ही बल-प्रयोगसे क्षणिक काम बना लिया जाय।

राज़े-मैख़ानए-हस्ती तो समझलूँ 'अकरम' !
दौर साग़रका मेरे हक़में भी चल सकता[1] है !

—आजकल मई १६५१

किसीकी यादने ली दिलमें अँगड़ाई तो क्या होगा
छलक उठ्ठा अगर जामे-शकेबाई[2] तो क्या होगा
अभी तो बिजलियोंका है, असर मेरे नशेमन तक
ख़ुदा ना-करदा[3] गुलशन पर भी आँच आई तो क्या होगा
हुजूमे-शौक़े[4]-आदाबे-वफ़ा[5] तुर्फ़ा क़यामत[6] है,
खुली उनपर जो दिलकी ना-शकेबाई[7] तो क्या होगा
तग़ाफ़ुलपर[8] मेरे दिलका यह आलम है मुहब्बतमें
कहीं उसने निगाहे-लुत्फ़ फ़र्माई तो क्या होगा
सुनाना चाहता हूँ क़िस्सए-ग़म उनको मैं लेकिन—
मुबादा[9] कहते-कहते आँख भर आई तो क्या होगा

छुपा रक्खा है, अपने आपको तुमने मगर 'अकरम' !
जो कोई दिन हक़ीक़त सामने आई तो क्या होगा

—निगार अगस्त १६५४

---

१. जीवन-मधुशालाका अन्तरंग समझ लिया जाय तो फिर साग़रका दौर अबाध गतिसे चलेगा । २. संजीदगीका पात्र, सब्र-पात्र, ३. भगवान् न करे, ४. प्रेम करनेकी बलवती इच्छाएँ, ५. भलमनसाहत, नम्रताका ख़याल, ६. अनोखी क़यामत है, ७. बेसब्री, ८. उपेक्षा पर, ६. अगर ।

सुकूँ - आमेज़[1] है कितना ग़मे-इन्सानियत 'अकरम'
निशाते-दर्द - मन्दीको[2] - कोई पूछे मेरे दिलसे

—निगार मार्च १९५७

तेरे इक जामसे होगा न दर्दे-ज़ीस्त ऐ साक़ी !
मेरे हिस्सेमें आया है ज़माने भरका ग़म साक़ी !
भुला देती है सब कुछ लज़्ज़ते-सहबाए-ग़म साक़ी !
यहाँ पैदा नहीं होता सवाले-कैफ़ो-कम साक़ी !

—निगार मार्च १९५८

मआले-आर्ज़ू[3] जो कुछ भी हो लेकिन यह क्या कम है,
निगाहे-शौक़ने आज उनसे दिलकी बात कह डाली
बहार आते ही ख़ुद अहले चमनने जिस तरह लूटा
ख़िज़ाँने की न होगी इस तरह गुलशनकी पामाली

अभीसे होश खो बैठा दिले-वहशत असर 'अकरम'
अभी छायेंगी गुलशनपर घटाएँ और मतवाली

मुद्दआ ये है मेरी शम-ए-तमन्ना गुल न हो,
अब समझमें आपका दामन बचाना आ गया

---

१. चैन देनेवाला, २. परदुःख कातरताका भावनारूपी सुख।
३. अभिलाषाओंका परिणाम।

'अख़्तर'—अ़ख़्तरअ़ली तिलहरी

बातोंपै मेरी हँसता, है तू वाइज़े-नादाँ[1]!
हों जैसे तेरे पास हक़ीक़तके क़बाले[2]
तज़हीक[3] है,तकफ़ीर[4] है अरबाबो[5]-ख़िरदकी
हैं, तेरी शरीअ़तके[6] यह अन्दाज़ निराले

मज़हब तो बहुत ख़ूब है, लेकिन वाइज़ !
मज़हबे-ज़िन्दगींसे[7] तेरी आ़जिज़[8] हैं ख़िरदमन्द[9]
बेसूद[10] मुबाहस[11] हैं, तेरे दीनका हासिल[12]
तकफ़ीरपै अरबाबे-नज़रकी है तू ख़ुरसन्द[13]

सज्दाहाए-बे-रियाके[14] बाद बा-सोज़ो-गुदाज़[15]
यह दुआ़ करते थे रात इक वाईज़े-मिम्बर नशीं[16]
"मुझको दुनिया कर अ़ता[17] दुनिया, करीमे ज़ुल-यमीन
रहने दे तू अपनी हूरें[18], अपना फ़िरदौसे-बरीं[19]

---

१. मूर्ख व्याख्यान-दाता, १. सत्यताके प्रमाण-पत्र, दस्तावेज़, संलेख । ३. बदनामी, मखौल उड़ाना, ४. काफ़िर बताना, ५. बुद्धिमानोंकी (विद्वान्-से-विद्वान्को अधार्मिक कह देना, उसका मज़ाक़ उड़ाना) ६. धार्मिकताके, मज़हबके, ७. धार्मिक-आचरण (ढोंग) ८. परेशान, ऊबे हुए, ९. बुद्धिमान्, १०. व्यर्थ, ११. बहस करना, १२. मज़हबका उद्देश्य, १३. ज्ञानी मनुष्योंको अधार्मिक सिद्ध करनेसे तू प्रसन्न होता है, १४. नमाजमें छल-कपट रहित मस्तक झुकानेके बाद, १५. करुण आवाज़में १६. मस्जिदके व्याख्यान-मंचपर, १७. प्रदान, १८. जन्नती परियाँ, १९. जन्नत ।

यह गुलिस्ताँ - आफ़रीं[1] चेहरे, यह गेसू दिल-नवाज़[2]
यह लिये आँखोंमें मैख़ाने बुताने-हिन्दो-चीं[3]
आजकी इशरतको[4] छोड़ूँ कलकी इशरतके लिए
मेर मौला मुझसे यह मुमकिन नहीं, मुमकिन नहीं''

—निगार दिसम्बर १९५४

नज़र नहीं है हक़ीक़त - निगर, तेरी वर्ना
बहारमें है वह क्या रंग जो ख़िज़ाँमें नहीं,
यूँ सुन रहा हूँ बर्क़ - नशेमनकी दास्ताँ
जैसे चमनमें कोई मेरा आशियाँ नहीं,

—निगार जून १९५७

'अख़्तर 'अलीअख़्तर

कोई और तर्ज़े-सितम सोचिए ।
दिल अब ख़ूगरे-इम्तिहाँ[5] हो गया ॥

मेरी मज़लूम[6] चुपपर शादमानीका[7] गुमाँ क्यों हो
कि नाउम्मीदियोंके ज़ख़्मको बहना नहीं आता ॥

तुझसे हयातो-मौतका[8] मसअला हल अगर न हो ।
ज़हरे-ग़मे-हयात पी मौतका इन्तिज़ार कर ॥

कब हुई आहको तौफ़ीक़े-करम[9] ।
आह ! जब ताक़ते-फ़रियाद नहीं ॥

---

१. फूल जैसा मुख, २. दिल मोहक ज़ुल्फ़ें, ३. हिन्द-चीनकी नशीली आँखोंवाली सुन्दरियाँ, ४. सुखको, ५. परीक्षाका अभ्यस्त, ६. अत्याचार-पीड़ित, ७. प्रसन्नताका, ८. जीवन-मृत्युका, ९. कृपा-करनेकी सामर्थ्य ।

ज़हमते-इल्तफ़ात[1] की, आपने आह ! क्या किया ?
अब वोह लताफ़तें कहाँ हसरते-इन्तज़ारमें ॥

करवटें लेती है फूलोंमें शराब ।
हमसे इस फ़स्लमें तौबा होगी ?

मेरी बलाको हो, जाती हुई बहारका ग़म ।
बहुत लुटाई हैं ऐसी जवानियाँ, मैंने ॥
मुझीको पर्दए-हस्तीमें दे रहा है फ़रेब ।
वोह हुस्न जिसको किया जलवा आफ़रीं मैंने ॥

नहीं ऐ हमनफ़स ! बेवजह मेरी गिरयासामानी[2] ।
नज़र अब वाक़िफ़े-राज़े-तबस्सुम[3] होती जाती है ॥

मेरी बेख़ुदी है उन आँखोंका सदक़ा ।
छलकती है जिनसे शराबे-मुहब्बत ॥
उलट जायें सब अक़्लो-इरफ़ाँकी बहसें ।
उठा दूँ अभी गर नक़ाबे-मुहब्बत ॥

—निगार जनवरी १९४१

'अज़हर' क़ादरी एम० ए०

बेगाना वार ऐसे वह गुज़रे क़रीबसे,
जैसे कि उनको मुझसे कोई वास्ता नहीं,

—बीसवीं सदी फरवरी १९५६

---

१. कृपा करनेकी तकलीफ़ उठाई, २. रुदन, ३. मुसकानके भेद से परिचित ।

'अज़हर' रिज़वी

मेरे शेर

हैं यह आहें मेरी जवानीकी
जहरमें बुझे हुए नश्तर
हैं मेरे ग़मकी मुख़्तलिफ़ शक्लें
यह मेरे दिलके दाग़ हैं, 'अज़हर'

बेज़ारगी

ज़िन्दगीकी "मसर्रतें"—तौबा !
और दिलको जलाये जाती हैं,
सो गईं थकके सब तमन्नाएँ
हसरतें जान खाये जाती हैं,

आर्ज़ू-ए-हयात

दिलके ज़ख़्मोंसे खेल लो 'अज़हर' !
अभी कुछ और रात बाक़ी है,
ज़िन्दगी ख़त्म हो चुकी, लेकिन—
आर्ज़ू-ए-हयात बाक़ी है,

ख़लिश

एक छोटा-सा अब्रका टुकड़ा
चाँदको अपनी गोदमें लेता
रातको देखकर ख़ुदा जाने
क्यों मेरे दिलमें दर्द होने लगा ?

—आजकल १ अगस्त १९४९

'अज़ीज़' वारसी

तेरी तलाशमें निकले हैं आज दीवाने।
कहाँ सहर हो, कहाँ शाम यह ख़ुदा जाने
हरम हमींसे, हमींसे हैं आज बुतख़ाने।
यह और बात है दुनिया हमें न पहचाने ॥

'अतहर' हापुड़ी

यह सनम ख़ाना है, काबा तो नहीं है, ज़ाहिद !
तुझको आना था यहाँ साहबे-ईमाँ होकर,

अदीब-माली गाँवी

उस जाने-बहाराँने जबसे मुँह फेर लिया है गुलशनसे ।
शाख़ोंने लचकना छोड़ दिया, ग़ुञ्चे भी चटकना भूल गये ॥

मज़ाके-ग़मेदिल नहीं हर किसीमें ।
बहुत फ़र्क़ है, आदमी-आदमीमें ॥

वही सलूक मेरे दिलसे तुम भी क्यों न करो ।
चमनके साथ जो फ़स्ले-बहार करती है ॥

तुम मेरी बात बनानेका इरादा तो करो ।
इसके आगे मेरी तक़दीर बने या न बने ॥

हुस्न फूलोंका है बाक़ी तो नशेमन लाखों ।
चार तिनकोंका तो ऐ बर्क़ ! चमन नाम नहीं ॥

मुआमलाते-जवानी न पूछ ऐ हमदम !
लुटा सकून तो हासिल हुआ क़रार मुझे ॥

मुझपै जो कुछ पड़ी, पड़ी, तुमने जो कुछ किया, किया ।
तुमको मलाल हो तो हो, मुझको ख़याल भी नहीं ॥
अपना अ़दा शनास बन, अपना जमाल भी तो देख ।
तुझमें कमी है कौन-सी, तुझमें कोई कमी नहीं ॥

मुहब्बतको अभी, फ़ुर्सत नहीं, अपने नज़ारोंसे ।
लिये बैठी रहे बज़्मे-दो आलम दिलकशी अपनी ॥

बिजलियाँ हैं कि मेरा हुस्ने-ख़याल ।
कुछ उजाला है आशियानेपर ॥

अभी आस टूटी नहीं है ख़ुशीकी ।
अभी ग़म उठानेको जी चाहता है ॥
तबस्सुम हो जिसमें नई ज़िन्दगीका ।
वोह आँसू बहानेको जी चाहता है ॥

ग़मेदिल अब इतना भी बढ़ता न जाये ।
वोह देखें मुझे और देखा न जाये ॥

दरिन्दोंमें हुआ करती हैं, अब सरगोशियाँ इसपर ।
कि इन्सानोंसे बढ़कर कोई, ख़ूँ आशाम क्या होगा ॥

—शाइर जून १६४६

ख़बर हो कारवाँको मंज़िले-मक़सूदकी क्यों कर ?
बजाये रहनुमाई रहज़नी है आम ऐ साक़ी !
वोह हैं मासूम जिनसे अंजुमनका नज़्म बरहम है ।
हमींपर किसलिए आता है, हर इल्ज़ाम ऐ साक़ी !

चमनकी रौनक़ें मातमकुनाँ थीं जिनके हाथोंसे ।
उन्हींपर मौसमे-गुलका है फ़ैज़े-आम ऐ साक़ी !
लहूने जिनके ईवाने-वतनको रोशनी बख़्शी ।
अभी तक उनके घरमें है सवादे-शाम ऐ साक़ी !

—शाइर अप्रैल १९५०

•

तुम्हें मुबारक हों क़सरो-ईवाँ, यह ऐशोमस्तीके साज़ो-सामाँ ।
है झोपड़ोंसे मुझे मुहब्बत, मैं ग़मके मारोंका साथ दूँगा ॥
हज़ारों भूके तड़प रहे हैं, हज़ारों बेकार फिर रहे हैं ।
बनूँगा बेकसका मैं सहारा, मैं बेसहारोंका साथ दूँगा ॥
न मुझको फूलोंसे दुश्मनी है, न मुझको ख़ारोंसे है अदावत ।
जो इख़्तलाफ़े-चमन मिटा दें, मैं उन बहारोंका साथ दूँगा ॥

—शाइर अक्टूबर १९५०

'अदीब' सहारनपुरी

न जाना था कि इकदिन पेश यह बातें भी आयेंगी ।
सितमके साथ याद उनकी सदा रातें भी आयेंगी ॥
शरारे पै-ब-पै उट्ठेगें इन बेख़्वाब आँखोंसे ।
ख़बर क्या थी कुछ ऐसी चाँदनी रातें भी आयेंगी

न काम हौसले आये न वलवले आये ।
रहे-वफ़ामें कुछ ऐसे भी मरहले आये ॥
हवासो-होश तो क्या, कायनात काँप गई ।
कभी-कभी तो दिलोंमें वोह ज़लज़ले आये ॥

दिलका यह तक़ाज़ा कि वोह जल्दी गुज़र जायें।
आँखोंकी तमन्ना कि वोह कुछ देर ठहर जायें॥

—निगार अगस्त १९४७

अताबो-जौरके मारे वहुत मिलेंगे मगर।
हमें तबाह किया मुसकरानेवालोंने॥
भुला सके न हम उनको अगर्चे सुनते हैं।
भुला दिया है ख़ुदाको भुलानेवालोंने॥
सकूँ तो ले ही गये थे वोह छीनकर लेकिन—
तड़पने भी न दिया दिल बढ़ानेवालोंने॥
कफ़समें रहके भी हम तो उन्हें न भूल सके।
हमें भो याद किया आशियानेवालोंने?
इलाजे-दर्दसे कुछ और दर्द बढ़ ही गया।
उन्हींका ज़िक्र किया आने-जानेवालोंने॥

—निगार सितम्बर १९४७

कौन इस तर्ज़े-जफ़ाए-आस्माँकी दाद दे।
बाग़ सारा फूँक डाला, आशियाँ रहने दिया॥

यह जोशे-बहाराँ, यह घटाएँ यह हवाएँ।
दीवाने न हो जायें अगर, लोग तो मर जायें॥

जितनी हविसकी अंजुमन आराइयाँ बढ़ीं।
उतने ही बाल शीशए-हस्तीमें आ गये॥

ख़िरदके शेव-ए-कारआगहीका हाल न पूछ।
जिस आईनेपै जिला की, वही ख़राब हुआ॥

—निगार अप्रैल १९५२

'अदम'——अब्दुलहमीद

हमसे हँसकर न यूँ ख़िताब करो,
इस तकल्लुफ़से इज्तनाब करो
चाँद तो रोज़ ही निकलता है
आज तख़लीके-आफ़ताब करो

आज तो अपनी आँखके सदक़े
पेश इक साग़रे-शराब करो,
मेरी बाहोंमें डालकर बाहें
दुश्मनोंके जिगर कबाब करो,

हेच हैं दौलतें दो आलमकी
शै कोई ख़ास इन्तख़ाब करो,
मेरी आँखोंकी तिश्नगी बनकर
सैरे-मैख़ानए-शबाब करो,

फ़ैज़ जारी है हुस्ने-मुतलक़का
आँखवालो कुछ इक्तसाब करो,
रात काफ़ी गुज़र चुकी है 'अदम' !
अब तो उट्ठो ज़रा-सा ख़्वाब करो,

—शमअ़ मार्च १९५८

जि़न्दगी तो तवील मुद्दत है,
चार पल भी बसर नहीं होते,
इसको परवाज़की न ज़हमत दो,
अक़्लके बालो-पर नहीं होते,
जिन निहालोंकी ख़ू न अच्छी हो
वह कभी बारवर नहीं होते,
तरबियत ज़िन्दगीका जौहर है,
बे-अदब बा-हुनर नहीं होते,
खोल दीजे करमके दरवाज़े
बारगाहोंके दर नहीं होते,
कोहकनको कोई यह समझा दे
महनतोंके समर नहीं होते,
जाना उनको भी है उधर ही 'अदम'
पर मेरे हमसफ़र नहीं होते,

—शमअ़ मार्च १९५८

अनवर साबरी

कोई सुने-न-सुने इन्क़लाबकी आवाज़ ।
पुकारनेकी हदोंतक तो हम पुकार आये ॥

जहाँ ख़ुद ख़िज़्रे-मंज़िल राहे-मंज़िल भूल जाता है ।
हमें आता है उन पुरपेच राहोंसे गुज़र जाना ॥

इसीका नाम है मजबूरिए-दिल उनके कूचेमें ।
न जानेकी क़सम सौवार खा लेना, मगर जाना ॥

राज़दारे-ख़ुदी हो तो जाये।
हासिले-ज़िन्दगी हो तो जाये॥
अमने-आलम तो मुश्किल नहीं है।
आदमी आदमी हो तो जाये॥

तू मेरे वास्ते एक और जहाँ पैदाकर।
यह जहाँ लग़ज़िशे-आदमके सिवा कुछ भी नहीं॥

'अफ़कर' मोहानी

मैं कफ़समें ख़ुद ही सैयाद! अभी आऊँगा पलटकर।
न मिला अगर चमनमें मुझे मेरा आशियाना॥

'अब्र' एहसनी

ज़मानेमें फिर कौन होता हमारा?
अगर तेरा ग़म भी न देता सहारा॥
यह सहारा वोह मंज़िलका दिलकश नज़ारा।
कहाँ लाके पाए-शकिस्ताँने मारा॥

यह आवाज़ दी दोस्तने या क़ज़ाने?
ज़रा देखना मुझको किसने पुकारा॥
ग़मो-दर्दपर बढ़के क़ब्ज़ा जमा ले।
कि इसपर नहीं मुनअ़िमोंका इजारा॥

अगर अब भी ज़िल्लतमें गुज़रे तो क़िस्मत।
ख़ुदी भी हमारी ख़ुदा भी हमारा॥

न होते पर तो क्यों सैयाद होता, क्यों क़फ़स होता।
बड़ी दुश्वारियोंके बाद राज़े-बालो-पर जाना ॥
यहींसे पड़ गई बुनियाद 'अब्र' अपनी तबाहीकी।
कि हमने उनके वादोंको हदीसे-मुअतबर जाना ॥

राहे-उल्फ़तमें अपनी ख़ुद्दारी[1]।
ठोकरें हर क़दम पै खाती है ॥
ख़मे-अबरूसे-दोस्तके क़ुर्बाँ[2]।
सरकशी[3] सर यहीं झुकाती है ॥
कोई जिसको सुने न दिलके सिवा।
यूँ भी आवाज़ उनकी आती है ॥
ग़शसे आते हैं, उनकी महफ़िलमें।
नाव साहिलपै[4] डूबी जाती है ॥
मुझको मुख़्तार जानता है जहाँ।
कैसी तुहमत लगाई जाती है ॥
नासहोंको यह कौन समझाये।
आशिक़ी आदमी बनाती है ॥
हर कली मुसकराके गुलशनमें।
ग़म-ज़दोंकी हँसी उड़ाती है ॥
चौंक पड़ता हूँ हर सदा पर यूँ।
जैसे आवाज़ उन्हींकी आती है ॥

---

१. स्वाभिमानकी, २. प्रेयसीकी टेढ़ी भवोंको शाबास है, ३. घमण्ड, उद्दण्डता, ४. दरिया किनारे।

इश्क़में जुर्मे - यक तबस्सुमपर[1] ।
बेकसी मुद्दतों रुलाती है ॥

—आजकल जून १९५४

न होना बज़्मको बेख़ुद बनाकर मुतमईन साक़ी !
अभी हुश्यार हैं कुछ रंगे-महफ़िल देखने वाले ॥
सफ़ीना ही तो है, टकरा भी जाता है किनारोंसे ।
सरे-साहिल न डूबें ख़्वावे-साहिल देखनेवाले ॥
ज़रा हुशियार रहना है वहुत दुनियाए-शातिरमें ।
तेरे रुख़पै मेरी कैफ़ीयतें-दिल देखने वाले ॥
नज़ाकत वह, जराहत[2] यह, वह मासूमी, यह जल्लादी ।
उन्हें हैरतसे तकते हैं, मेरा दिल देखने वाले ॥
ज़माना बदगुमाँ, चेहरा परेशाँ, गुलफ़िशाँ दामन ।
ख़बर ले पहिले अपनी नब्ज़े-बिस्मिल देखने वाले ॥
इन्हीं दिलचस्प मौज़ोंमें सफ़ीने डूब जाते हैं ।
मिज़ाजे-बहर क्या समझेंगे साहिल देखने वाले ॥
बहर - सू घूमनेवालेको कोई 'अब्र' समझा दे ।
कि तू ही ख़ुद है, मंज़िल सूए-मंज़िल देखने वाले ॥

—तहरीक सितम्बर १९५४

हर-इक नज़रमें है रक़्साँ वह मौजे-नूर अब तक ।
भुला सका न जहाँ दास्ताने-तूर अब तक ॥
जुनूँके[3] हाथमें सब कारो-बार सौंप दिया ।
बशरको आया न जीनेका भी शऊर अब तक ॥

---

१. एक मुसकानके अपराधपर, २. घाव, ३. उन्मादके ।

ख़बर नहीं तुम्हें देखा था कैसे आलममें ।
उबल रही है निगाहोंसे मौजे-नूर अब तक ॥
चमन ही फूँक दिया मेरे आशियाँके साथ ।
न आया वर्क़को गिरनेका भी शऊर अब तक ॥
मिटाके क़ालिबे-दौलतमें आ गया फ़रऊन ।
मचल रहा है, हर ईवानमें ग़रूर अब तक ॥
वही फ़सानए-इन्सानियत दरिन्दोंमें ।
दमाग़े-हज़रते-नासेहमें है फ़ितूर अब तक ॥
जो हो सके तो भड़कते दिलोंको ठण्डा कर ।
बहुत बना दिये तेरी नज़रने तूर अब तक ॥
मगर यह नंग है, ऐ 'अब्र' बे-वफ़ाओंमें ।
वफ़ाका दम भरते तो हो तुम ज़रूर अब तक ॥

—तहरीक नवम्बर १६५४

'अम्न' हरिवंशनारायण

उन्हींकी बज़्म सही, यह कहाँका है दस्तूर ?
इधरको देखना, देना उधरको पैमाने ॥

'अयूब'

जो हुस्नो-इश्क़की रूदादसे हैं बेगाने ।
वोह क्या समझके चले आये, मुझको समझाने ?

'अरशद' काकवी

शम-ए-उम्मीद बुझ गई लेकिन—
रोशनी है कि कम नहीं होती ॥

खुलता जाता है, एक-इक तख़्ता ।
और कश्ती रवाँ है पानीमें ॥
ज़िन्दगी और यह तमन्नाएँ ?
जल रहा है, चिराग़ पानीमें ॥

तेरी रहबरीसे हारा, मेरे नाख़ुदा ख़ुदारा ।
मेरा फ़ैसला अभी कर, वोह भँवर हो या किनारा॥
यह हयाते-चन्द रोज़ा भी अजब तरह गुज़ारी ।
कभी ज़ीस्तकी, दुआ की, कभी मौतको पुकारा ॥

अर्श सहबाई

साक़ी ! वही है, तल्ख़िए-ग़मका असर अभी ।
जामे-सुबूको रहने दे पेशे-नज़र अभी ॥
क्या जाने किस ख़यालसे शर्माके रह गये ।
वह मुसकराके देख रहे थे इधर अभी ॥
साक़ी ! अब एक जाम निगाहोंसे भी पिला ।
है तेरे मैगुसारको अपनी ख़बर अभी ॥

—तहरीक अक्तूबर १९५४

शबे-ज़िन्दगी मुख़्तसिर हो रही है ।
चलो बस चलें 'अब' सहर हो रही है ॥
पसे-पर्दा क्या है, बता दीजिएगा ।
जो हम पर करमकी नज़र हो रही है ॥

—बीसवींसदी अप्रैल १९५६

० 'अर्शी' भोपाली

वह हमसे ख़फ़ा तो हैं लेकिन, आया न ख़फ़ा होना भी उन्हें।
एहबाबने उनकी नज़रोंको, सौबार परीशाँ देखा है॥
अब कहिए तो उनसे क्या कहिए, कुछ याद नहीं सब भूल गये।
दामन तो यह कहकर थामा था "कुछ आपसे हमको कहना है"॥
तजदीदे-करम सर आँखोंपर, यह दौलते-ग़म तो मुझसे न ले।
कुछ और सँवरना है मुझको, कुछ और भी मुझको जीना है॥

तजदीदे-आर्ज़ू के लिए दिल मचल न जाय।
मुद्दतके बाद फिर वोह नज़र आ गये हैं आज॥
शायद उन्हें भी रंजिशे-बाहम है नागवार।
मुझसे निगाह मिलते ही घबरा गये हैं आज॥
अब देखिए पहुँचती हैं बरबादियाँ कहाँ?
उनकी हसीन आँखोंमें अश्क आ गये हैं आज॥

जब कभी दर्दे-मुहब्बतमें कमी पाई है।
अपनी हालतपै मुझे आप हँसी आई है॥
आपके अहदे - करमका भी तसव्वुर है गराँ।
उन मुक़ामातपै अब आपका सौदाई है॥

बरहमीका दौर भी किस दरजा नाज़ुक दौर है।
उनकी बज़्मे-नाज़तक जा-जाके लौट आता हूँ मैं॥

हयाते-खुल्द भी 'अर्शी' कहाँ जवाब उनका।
जो उनकी बज़्ममें घड़ियाँ गुज़ार दीं मैंने॥

बेताबिए-दिलके इन नाज़ुक लमहोंका तसव्वुर तो कीजे।
जब अहदे-मुहब्बत होते ही फ़ुरक़तका ज़माना आ जाये॥

तेरी नीची नज़रकी यादका आलम अरे तौबा।
चुभा कर दिलमें जैसे तोड़ डाले कोई पैकाँको॥

थरथराते हुए हाथोंसे जाम देता है।
चारागर आज न जाने मुझे क्या देता है॥
कुछ तो होता है हसीनोंको भी एहसासे-जमाल।
और कुछ इश्क़ भी मग़रूर बना देता है॥
दार मिल ही गई मनसूरको 'अर्शी' वरना।
कौन दुनियामें मुहब्बतका सिला देता है॥

आग़ाज़े-आशिक़ीका अल्लाहरे ज़माना।
हर बात बहकी-बहकी हर गाम वालहाना॥
उनके मेरे मरासम थे बेतकल्लुफ़ाना।
ऐसा भी आ चुका है, उल्फ़तमें इक ज़माना॥
सौ बार देखकर भी यूँ मुज़तरब हैं नज़रें।
जैसे गुज़र गया हो देखे हुए ज़माना॥

—निगार जुलाई १९४६

उनको देखा था अभी, फिर इस तरह बेताब हूँ।
वाक़ई देखे हुए जैसे ज़माना हो गया॥
तानए-एहबाब, दुनियाकी क़यास - आराइयाँ।
इक तेरी ख़ातिर मुझे सब कुछ गवारा हो गया॥

इस्मते-कौनैन उस बरबादे-उलफ़तपर निसार।
उनके दामनको बचा कर ख़ुद जो रुसवा हो गया॥

उनकी महफ़िलमें भी 'अर्शी' कम नहीं दिलकी तड़प।
यह तबीयतको ख़ुदा जाने मेरी क्या हो गया॥

—निगार सितम्बर १९४६

सोज़े-उल्फ़तसे वोह कम मायए-ग़म है महरूम।
आतिशे-दिलको जो अश्कोंसे बुझा देता है॥

जब उन्हें अर्ज़े-अलमपर मुज़तरिब पाता हूँ मैं।
जो न पीनेके हैं आँसू, वह भी पी जाता हूँ मैं॥
दिलकी बेताबीके सदक़े जलवागाहे - नाज़में।
अब तो अक्सर बेबुलाये भी चला जाता हूँ मैं॥
बहकी - बहकी - सी निगाहें, लड़खड़ाये-से क़दम।
हाय! वोह आलम कि उनके सामने जाता हूँ मैं॥
उनकी आँखोंके तसद्दुक़, उनकी आँखोंके निसार।
अब तो 'अर्शी'के लिए अक्सर बहक जाता हूँ मैं॥

निगाहे - शौक़से कबतक मुक़ाबिला करते?
वोह इल्फ़ात न करते तो और क्या करते?
यह पूछो हुस्नको इल्ज़ाम देनेवालोंसे।
जो वोह सितम भी न करता तो आप क्या करते?
हमें तो अपनी तबाहीकी दाद भी न मिली।
तेरी नवाज़िशे - बेजाका क्या गिला करते?

—निगार सितम्बर १९४९

वोह आये सामने लेकिन नज़र मिला न सके ।
मेरी निगाहे-तमन्नाकी ताब ला न सके ॥
रहे-वफ़ाकी कठिन मंज़िलें अरे तौबा ।
वोह थोड़ी दूर भी हमराह मेरे आ न सके ॥
ज़माना कहता है बरबादे-आर्ज़ू मुझको ।
ख़ुदा करे कोई इल्ज़ाम उनपै आ न सके ॥
न जाने टूट पड़ी क्या क़यामतें दिलपर ।
हम आज शिद्दते-ग़ममें भी मुसकरा न सके ॥
तेरी हयाते-सकूँ-आश्नासे क्या हासिल ?
वोह नक़्श छोड़, ज़माना जिसे मिटा न सके ॥
न कहते थे कि है बेसूद उनसे अर्ज़े-अलम ।
जबाँपै चन्द सितारे भी झिलमिला न सके ॥
तेरी नवाज़िशे-बेहदका शुक्रिया लेकिन—
वोह क्या करे जिसे क़ुरबत भी रास आ न सके ॥
न पूछ उसकी तबाही जो सामने उनके ।
छुपाये राज़े-अलम और मुसकरा न सके ॥
ग़मे-हयातमें यह सख़्त मरहले तौबा ।
कभी-कभी तो मुझे वोह भी याद आ न सके ॥
किसी तरह उसे जीनेका हक़ नहीं हासिल ।
जो अपने आँसुओंमें ख़ूने-दिल मिला न सके ॥

हमसे और उनसे तर्के-मुलाक़ात हो गई ।
दुनिया जो चाहती थी, वही बात हो गई ॥

यह तमकनत, यह ज़ोम, महवे-वजहे-बरहमी ।
अब कौन उनसे पूछे कि क्या बात हो गई ॥
इज़्हारे - ग़मपै और वोह बेगाना हो गये ।
क्या बात हमने सोची थी, क्या बात हो गई ॥
रोज़े - फ़िराक़े-यारकी अल्लाहरे तीरगी ।
यह भी ख़बर नहीं है कि कब रात हो गई ॥
'अर्शी' कुछ इस तरहसे हूँ ख़ुश उनको देखकर ।
जैसे हर-इक सितमकी मकाफ़ात हो गई ॥

'अशअ़र' मलीहाबादी

हरबार दिलने एक चोट खाई ।
हरबार टूटी है पारसाई ॥
ख़ाली सुराही, ख़ाली पियाले ।
काली घटा तू बेकार आई ॥
मै-नोशियों पर मै-नोशियाँ हैं ।
फिर भी नहीं है, ग़मसे रिहाई ॥

अब सीख गया क़ैदी आदाब असीरीके ।
मद्धम-सी कई दिनसे आवाज़े-सलासिल है ॥

नशा तो है मगर अन्देश-ए-गुनाह नहीं ।
घुले हैं, तेरी निगाहोंमें कैसे मैख़ाने ॥

चमनमें बहे लाख शबनमके आँसू ।
कली सीखती ही रही मुसकराना ॥

—शाइर मई १९५०

'अशरफ़' शहाब

दर-बदर जिनके लिए रुसवा हुआ ।
मैं उन्हींसे मिलके आज़ुर्दा हुआ ॥
यूँ न दीवानेको पत्थर मारिए ।
ख़ुद चला जायेगा कुछ बकता हुआ ॥
आज दिल धड़का मेरा कुछ इस तरह ।
उनके आनेका मुझे धोका हुआ ॥
दिलसे कहते थे न ऐसी राह चल ।
ठोकरें खाकर गिरा अच्छा हुआ ॥
यह जवानीकी तेरी शादाबियाँ ।
सरसे पातक इक चमन महका हुआ ॥

—निगार मार्च १९५८

'असद' भोपाली

ग़मे-हयातसे जब वास्ता पड़ा होगा ।
मुझे भी आपने दिलसे भुला दिया होगा ॥
'असद' चलो कि बदल दें हयातकी तक़दीर ।
हमारे साथ ज़मानेका फ़ैसला होगा ॥

'असर' असलम क़िदवई

ख़लिश

ज़माना बीत चुका तर्के-इश्क़को लेकिन
किसीकी याद अभी दिलको गुद-गुदाती है,
हसीन रातोंकी पुरकैफ़ चाँदनी बनकर
तरब-नवाज़ बहारोंको साथ लाती है,

मेरे ख़यालकी दुनियामें रोशनी लेकर
. तेरे विसालकी तावीर मुसकराती है

ज़माना चाहिए लेकिन अभी फ़राग़तको
फ़िज़ाएँ रास नहीं दावते-नज़रके लिए
यह ज़िन्दगीका कड़ा दौर है मेरे महबूब !
मैं जानता हूँ कि मुज़्तर है, तू 'असर'के लिए
तेरे लिए मैं इरादे बदल नहीं सकता
कि ज़िन्दगी है, मेरी ख़िदमते-बशरके लिए

—शाइर जून १९५१

'असर' रामपुरी

जिन्हें जुनूँमें भी रहता है पासे-रुसवाई ।
शऊरमन्दोंसे बेहतर हैं ऐसे दीवाने ॥

ब-कोशिश जज़्बए-उल्फ़त कभी पैदा नहीं होता ।
यह आतिश ख़ुद भड़क उठती है, भड़काई नहीं जाती ॥
हदीसे-इश्क़की तशरीह तुझसे क्या करूँ नासेह !
समझमें ख़ुद तो आ जाती है, समझाई नहीं जाती ॥
न जाने किन हसीं हाथोंने रक्खी है बिना इसकी ।
यह दुनिया लाख बिगड़े इसकी रअनाई नहीं जाती ॥
'असर' मैंने वफ़ाका ज़िक्र जब उनसे किया, बोले—
"सुना तो है कि होती है, मगर पाई नहीं जाती" ॥

—आजकल १ अगस्त १९४६

उनके जल्वोंका अजब मैंने समाँ देखा है ।
इक नये रंगमें देखा है, जहाँ देखा है ॥
हुस्ने-मग़रूरका तुम देख चुके इस्तग़ना ।
अश्क़ ख़ुद्दार मगर तुमने कहाँ देखा है ?
जिस क़दर मुझको ज़मानेने किया है पामाल ।
मैंने उतना ही उम्मीदोंको जवाँ देखा है ॥
जिससे ऊँचा ही बलन्दीमें नहीं कोई मुक़ाम ।
मैंने हिम्मतको वहाँ तेज़ अनाँ देखा है ॥
चश्मे-मख़मूरसे जब मुझको किसीने देखा ।
मैंने घबराके सुए-बादाकशाँ देखा है ॥
दिलको बहलायेगा क्या मौसमे-गुलका मंज़र ।
हमने इस मर्तबा वह रंगे-ख़िज़ाँ देखा है ॥
क्यों हैं वह चीं-ब-जबीं हुस्नकी फ़ितरतके ख़िलाफ़ ।
मैंने हर गुलको 'असर' ख़न्दाँ वहाँ देखा है ॥

—तहरीक नवम्बर १९५४

हज़ार ऐशकी सुबहें निसार हैं जिनपर ।
मेरी हयातमें ऐसी भी इक शबे-ग़म है ॥

जल्वे यह मेरी आँखोंमें किसके समा गये ?
नज़रें उठीं तो कोनो-मकाँ जगमगा गये ॥
अल्लाहरे तसव्वुरे - जानाँकी शोख़ियाँ ।
जैसे वह मुसकराते मेरे पास आ गये ॥

—तहरीक मई १९५५

---

१. प्रेयसीकी चुलबुले स्वभावका ध्यान ।

जुनूमें मिट गया एहसासे-ज़िल्लतो - ख़्वारी।
ज़रा तो सोचिए क्या होके रह गया हूँ मैं ?

—तहरीक दिसम्बर १९५५

'अहमद' अज़ीमाबादी

आलमे - इन्तज़ारमें 'अहमद' !
अब किसीका भी इन्तज़ार नहीं ॥

'अनवर'—इफ़्तख़ार आज़िमी

शबे-ग़म[१] मैं तारे लुटाता रहा हूँ।
मुहब्बतमें आँसू बहाता रहा हूँ ॥
चमनमें नहीं हूँ तो क्या ख़ूने-दिलसे।
क़फ़समें गुलिस्ताँ बनाता रहा हूँ ॥
हवादिसके[२] इन ख़ारज़ारोंमें[३] हमदम[४] !
गुलोंकी तरह मुसकराता रहा हूँ ॥
मुहब्बतकी तारीकिए-यासमें[५] भी।
चिराग़े - तमन्ना जलाता रहा हूँ ॥

ख़िज़ाँमें भी अहले-चमनको मैं 'अनवर' !
नवीदे-बहाराँ[६] सुनाता रहा हूँ ॥

—निगार मार्च १९५२

---

१. दुखःपूर्ण रातोंमें, २. मुसीबतोंके, ३. कण्टकाकीर्ण दुनियामें, ४. मित्र, ५. निराशा, अँधियारोंमें, ६. बहारका सन्देश।

आग़ा सादिक़

अपने उभरे हुए जज़्बातसे बातें की हैं।
रातभर तारों भरी रातसे बातें की हैं॥
ज़िन्दगीके भी क़दम रुक गये चलते-चलते।
यूँ धड़कते हुए लमहातसे बातें की हैं॥
फ़र्ज़ करता हूँ कि इक बात कही है तूने।
और तसव्वुरमें उसी बातसे बातें की हैं॥
दिल भी क्या चीज़ है बहलाये बहलता ही नहीं।
और तो और ख़यालातमें बातें की हैं॥

—माहे-नौ अगस्त १९५१

'आफ़ताब' अकबराबादी

रक्से-बहार

बहारें रक़्स करती हैं, नज़ारे रक़्स करते हैं।
चमनके फूल, हँसनेसे तुम्हारे रक़्स करते हैं॥
लबे-लालेसे जब वह मुसकरा देते है गुलशनमें।
भड़क कर आतिशे-गुलके शरारे रक़्स करते हैं॥

तेरी नज़रोंका जो तूफ़ान टकराता है इस दिलसे ।
इसी तूफ़ानकी मौजोंके धारे रक़्स करते हैं ॥
बुझा जाता है दिल, उम्मीद भी अब टूटी जाती है ।
यह आख़िर क्यों शबे-ग़मके सितारे रक़्स करते हैं ?

किसे एहसास होता है, मुहव्बतकी तबाहीका ।
सफ़ीने डूब जाते हैं, किनारे रक़्स करते हैं ॥
जहन्नुम भी पनाहें ढूँढ़ती है, 'आफ़ताब' उस वक़्त ।
कि जब सोज़े-मुहव्वतके शरारे रक़्स करते हैं ॥

—'शमअ' फरवरी १९५८

'आबिद' शाहजहाँपुरी

रुबाइयात

इज़हारे-हक़ीक़तके[1] लिए आये थे ।
तब्दीलिए-फ़ितरतके[2] लिए आये थे ॥
ख़ुद हज़रते-वाइज़ भी उठे हैं पीकर ।
रिन्दोंकी हिदायतके लिए आये थे ॥

यह मंज़रे-पुर-कैफ़ बदल जाने दे ।
मदहोश तबीयतको सँभल जाने दे ॥
वाइज़ तेरा फ़रमान मेरे सर आँखों पर ।
मुमकिन हो तो बरसात निकल जाने दे ॥

---

१. वास्तविक बात कहनेके, २. स्वभाव परिवर्तनके ।

हिलती नज़र आती है असासे-तौबा[1] ।
लरज़ाँ है दिले-क़द्र शनासे-तौबा[2] ॥
नादिम[3] मुझे होना ही पड़ेगा 'आबिद' !
बरसातमें दुश्वार है, पासे-तौबा,[4] ॥

पीनेको तो फ़िरदौसमें[5] अक्सर पी ली ।
अब क्या यह फ़साना कहूँ क्योंकर पी ली ॥
रंगीनिए-सहबा[6] है, न जोशे-सहबा ।
अफ़सुर्दा दिलीसे[7] मए-कौसर पी ली ॥

—तहरीक नवम्बर १९५४

'आलम' मुहम्मद मसरूफ़

उनके तसव्वुरातका अल्लाहरे करम !
तनहा न एक लमहेको रहने दिया मुझे ॥
कुछ लड़खड़ा गये थे क़दम बज़्मे-नाज़में ।
उनकी नज़रने उठके सहारा दिया मुझे ॥

—आजकल अक्टूबर १९५०

महमूद 'आलम' बस्तवी

गुलशनके दिलफ़रेब नज़ारोंसे पूछ लो ।
तुम कितनी ख़ूबरू हो बहारोंसे पूछ लो ॥
हर शैमें रोशनी है तुम्हारे जमालकी ।
मेरा न हो यक़ीं तो सितारोंसे पूछ लो ॥

---

१. तौबाकी नींव, प्रतिज्ञाकी जड़, २. तौबाका आदर करनेवालोंके दिल हिल रहे हैं, ३. शर्मिन्दा, ४. तौबाका लिहाज ५. जन्नतमें, ६. जन्नती शराबमें न रंगीनी है न जोश है, ७. बेमनसे ।

क्यों आज बे पिये ही बहकने लगा हूँ मैं।
अपनी नज़रके मस्त इशारोंसे पूछ लो ॥
होते हैं कितने मुख़्तसर ऐय्यामे-लुत्फ़े-दोस्त।
हम बदनसीब हिज्रके मारोंसे पूछ लो ॥
क्या-क्या मज़े हैं, कोशिशे-नाकामे ज़ीस्तमें।
'आलम' ग़मे-हयातके मारोंसे पूछ लो ॥

—बीसवीं सदी फ़रवरी १९५६

'इक़बाल' सफ़ीपुरी

सब्ज़ा भी, कली भी, ग़ुञ्चे भी, मौसम भी, घटा भी, जाम भी है।
ऐसेमें काश तुम आ जाओ, ऐसेमें तुम्हारा काम भी है ॥

'इक़बाल' अज़ीम

सब खोके भी हम कुछ पा न सके, वोह हमसे अलग, हम उनसे अलग।
दुनिया जिसे देखे और हँसे, हम ऐसा तमाशा कर बैठे ॥
वोह दर्द नहीं, वोह हूक नहीं, वोह अश्क नहीं, वोह आह नहीं।
गुल करके मुहब्बतके शोले, हम घरमें अँधेरा कर बैठे ॥
सावनकी झड़ी, घनघोर घटा, शादाब चमन, शादाब फ़िज़ा।
इन सबका करें हम क्या आख़िर, जब तुम ही कनारा कर बैठे ॥
अंजामकी लज़्ज़त याद रही, आग़ाज़की शिद्दत भूल गये।
साहिलके छलावेमें आकर, मौजोंपै भरोसा कर बैठे ॥
पहलूमें लिये बैठे हैं वोह दिल, 'इक़बाल' कि मूसा रश्क करे।
जो तूरको भी रास आ न सकी, उस बर्क़को अपना कर बैठे ॥

—आजकल १ सितम्बर १९४५

'इज़हार' मलीहाबादी

कभी भूलेसे बज़्मो-इश्क़ो-उल्फ़तमें अगर जाना ।
तो पहले ही हदूदे-कुफ़्रो-ईमाँमें गुज़र जाना ॥
किनारेसे किनारा कर लिया 'इज़हारे'-तूफ़ाँमें ।
बड़ी तौहीन थी अपनी, किनारेपर ठहर जाना ॥

'इबरत'

इधर आँख झपकी उधर ढल गई वह ।
जवानी भी एक धूप थी दोपहरकी ॥

'क़तील'

कोई ताबिन्दा किरन यूँ मेरे दिलपर लपकी ।
जैसे सोये हुए मज़लूमपै तलवार उठे ॥
मेरे ग़मख़्वार ! मेरे दोस्त ! ! तुम्हें क्या मालूम ?
ज़िन्दगी मौतकी मानिन्द गुज़ारी मैंने ॥

'क़दीर'

तमाम उम्र रहे कुफ़्र-ओ-दींसे बेगाने ।
हर-एक राहको हम अपनी रहगुज़र जाने ॥
'क़दीर' अपने ही जलवोंसे जो हैं बेगाने ।
वह मेरे दिलकी तमन्नाका हाल क्या जाने ॥

'क़मर' भुसावली

मेरी ज़िन्दगी है वोह आइना, कई रूप जिसके बदल गये ।
कभी अक्स जलवानुमाँ हुआ, कभी जलवे अक्समें ढल गये ॥
यह तसव्वुरातकी महफ़िलें, यह तख़य्युलातके मशग़ले ।
कभी आ गये तेरे पास हम, कभी और दूर निकल गये ॥

न वोह सुबह है, न वोह शाम है, न पयाम है न, सलाम है।
तेरी आँख मुझसे जो फिर गई, मेरे सुबहो-शाम बदल गये॥
तू सम्भल-सम्भलके क़दम बढ़ा, कि यह राहे-इश्क़ है ऐ 'क़मर'!
जो बिगड़ गये तो बिगड़ गये, जो सम्भल गये तो सम्भल गये॥

—शाइर दिसम्बर १९४७

'क़मर' मुरादाबादी

चन्द बेरब्त ख़यालात लिये बैठा हूँ।
अपने उलझे हुए हालात लिये बैठा हूँ॥
वोह तो मुद्दत हुई वेज़ारे-वफ़ा हो भी चुके।
मैं अभी शुक्रो-शिकायात लिये बैठा हूँ॥

'क़मर' शेरवानी

कभी आशियाँकी तमन्ना मुसलसल।
कभी आशियाँ तक गये, लौट आये॥

कुछ ऐसी भी ख़ुनक रातें रही हैं।
सहर तक बस तेरी बातें रही हैं॥
तुझे देखा नहीं है फिर भी तुझसे।
मेरी अक्सर मुलाक़ातें रही हैं॥

जीनेवालोंको क्या ख़बर इसकी।
मरनेवाले किधरसे गुजरे हैं॥

गाहे-गाहे तो होशवालोंपर।
हम भी दीवानावार हँसते हैं॥

ग़म दिये कायनातने क्या-क्या ?
नाम बदले हयातने क्या-क्या ?

रंग देखे मेरी तबाहीके ।
आपके इल्तफ़ातने क्या-क्या ?

—निगार अप्रैल १९५३

'क़मर'

७ जो हुस्न इश्क़में गुम है, तो इश्क़ हुस्नमें गुम ।
सवाल ये है कि अब कौन किसको पहचाने ॥

'कलीम' बरनी

हट गईं नज़ारोंसे नज़रें, मैक़दा-सा लुट गया ।
मिल गईं नज़रोंसे नज़रें, मैकशी होने लगी ॥
बारे-ख़ातिर गर न हो तो इस तरफ़ भी इक नज़र ।
फिर मेरे दर्दे-मुहब्बतमें कमी होने लगी ॥
अव्वल-अव्वल छेड़ उनसे आँखों-आँखोंमें हुई ।
आख़िर-आख़िर रूहसे वाबस्तगी होने लगी !
ऐ कलीम ! उस जानेगुलशनका नज़ारा कुछ न पूछ ।
मैं तो क्या फूलोंपै तारी बेख़ुदी होने लगी ॥

'क़ासिम' शबीर नक़वी

यह दैरो-काबाकी मंज़िलें तो फ़क़त 'गुज़रगाहे-बन्दगी' हैं ।
जहाँपै सज्दे हैं बेख़ुदीके[1], वहाँ कोई आस्ताँ[2] नहीं है ॥

---

१. तन्मयताके, २. उपासनाके लिए निशान ।

तबाहियोंका ख़याल क्यों है, चमनकी रौनक़ बढ़ाने वालो !
जो बिजलियोंको न आजमाये, वह आशियाँ, आशियाँ नहीं है ॥

वह दिन गये कि ज़िन्दगी-ए-दिलपै नाज़ था ।
मुद्दत हुई कि ग़म तो है, एहसासे-ग़म[1] नहीं ॥

'क़ैफ़ी' चिड़िया कोटी

यह धोका हो न हो उम्मीद ही मालूम होती है ।
कि मुझको दूरसे कुछ रोशनी मालूम होती है ॥

ख़ुदा जाने किस अन्दाज़े-नज़रसे तुमने देखा है ।
कि मुझको ज़िन्दगी अब ज़िन्दगी मालूम होती है ॥

इसीका नाम शायद ज़िन्दगीने यास[2] रक्खा है ।
नफ़सकी जो ख़टक है, आख़िरी मालूम होती है ॥

तसव्वुरमें[3] है मेरे, यूँ फ़रेबे-बज़्म-आराई[4] ।
अँधेरी रात है, और चाँदनी मालूम होती है ॥

कहाँ हूँ, किस तरफ़ हूँ मैं? ख़बर इसकी नहीं मुझको ।
यही गुम-गश्तगी[5] कुछ आगही[6] मालूम होती है ॥

सरे-मौजे-नफ़स[7] कश्तीए दिलको क्या कहूँ 'क़ैफ़ी' ।
उभरती है जहाँ तक डूबती मालूम होती है ॥

—निगार जुलाई १९५२

---

१. दुःखोंका आभास, ज्ञान, २. निराशा, ३. ध्यानमें, ४. महफ़िलोंके धोके, ५. भुलक्कड़ स्वभाव, ६. मालूमात, बुद्धि, ७. इन्द्रिय-वासनाओंकी दरियामें ।

'क़ैस' अमरचन्द जालन्धरी

हायल न कभी कोह हुए राहमें जिनकी ।
वह नक़्श-ब-दीवार हैं मालूम नहीं क्यों ?

—बीसवीं सदी जुलाई १९५६

'कोकब' शाहजहाँपुरी

यह तो नहीं कि ख़ारे-तमन्ना[1] नहीं मगर ।
ग़ुरबतमें[2] वह ख़लिश[3] न रहीं जो वतनमें थी ॥

बदनसीबोंको कहाँ जमईयते-ख़ातिर[4] नसीब ।
और उलझता हूँ अगर कोई परेशानी न हो ॥

उम्र भर पासे - फ़रेबे - दोस्ताँ[5] करते रहे ।
हम मुहब्बतमें ख़ुद अपना इम्तहाँ करते रहे ॥

'कोकब' यही नहीं कि मुहब्बत न आई रास ।
दुनियाके कामका भी तो अब दिल नहीं रहा ॥

अल्लाह - अल्लाह यह आलमे - हसरत[6] ।
कि तबस्सुम[7] भी है इक आहे - ख़मोश ॥

देखिए फिर उसी अन्दाज़से देखा मुझको ।
फिर दिया जायगा इल्ज़ामे-तमन्ना मुझको ॥

---

१. अभिलाषाओंकी चुभन, २. परदेशमें, ३. चुभन, ४. तसल्ली, दिल जमई, ५. मित्रोंके छल-व्यवहारका आदर, ६. इच्छाओंका नतीजा, हाल, ७. मुसकान ।

मुझको तर्के - मुद्दआसे[1] जान देना सहल था ।
लेकिन अब तेरी ख़ुशीपर यह भी ठुकराता हूँ मैं ॥
समा गया है, वह जाने - बहार आँखोंमें ।
मेरी निगाहमें हर गुल नक़ाब रंगीं है ॥

—निगार अक्तूबर १९५४

'कौसर' मेहरचन्द

मैं साथ जाऊँगा नामावरके कि देखूँ उससे वह कहते क्या हैं ।
सुनूँगा यूँ छुपके उनकी बातें, उठाऊँगा लुत्फ़ गुफ़्तगूका, ॥
यह सोचता हूँ कि मेरी राहें फिर इतनी पुरअम्न किस लिए थीं ?
लुटा है मंज़िलपै आके 'कौसर' जो कारवाँ मेरी आ.ज़ूका ॥

वजहे-सकूँ है, आलमे - सरमस्ती - ओ - ज़नूँ ।
अच्छा हुआ कि होशका काँटा निकल गया ॥

—बीसवीं सदी फ़रवरी १९५६

यह सुबह, सुबहे-मसर्रत, न शाम, शामे-तरब ।
हयात कश-म-कशे - जब्रो - इख़्तियारमें है ॥
उधर उन्हें नहीं फ़ुर्सत नज़र उठानेकी ।
इधर ज़माना क़यामतके इन्तज़ारमें है ॥
मेरी हयाते-मुहब्बत अजब मुअम्मा है ।
न अख़्तियारसे बाहर न अख़्तियारमें है ॥
बिछे हुए हैं, चमनमें रविश-रविश काँटे ।
ख़िज़ाँका ज़ख़्म अभी सीनए-बहारमें है ॥

---

१. चाहतके त्यागसे ।

तेरे जमालने बख़्शा इसे कमाले-सुख़न।
वगर्ना 'कौसरे'-नाशाद किस शुमारमें है।

—तहरीक अक्तूबर १९५४

'कौसर' क़ुरैशी

मुझे आता है 'कौसर' हश्रगाहोंसे गुज़र जाना।
मैं इन्साँ हूँ मेरी तौहीन है घुट-घुटके मर जाना॥
यह कैसा अज़्मे-मंज़िल ऐ अमीरे-जादहे-मंज़िल!
यह क्या अन्दाज़ है, दो गाम चलना और ठहर जाना॥

कृष्ण मोहन

सरे राहे

शर्बती होंट हिले और शराबी आँखें
मुझसे कुछ कहने लगी
नीम ख़्वाबीदासे बेबस अरमाँ
करवटें लेने लगे

....

पलकोंके साये तले
एक पैमाने-वफ़ा बाँधा गया

यास

याद आते हैं, ख़िज़ाँ के पत्ते
ज़र्द पत्तोंपै वह शबनमकी बहार
एक़ कैफ़ियते-यास
आरिज़े-ज़र्दपै जिस तरह वहे अश्के-वफ़ा

—तहरीक़ सितम्बर १९५४

'ख़लिश' दर्दी बड़ौदी

खेलते हैं जो मज़लूमोंकी जानोंसे।
हैवान अच्छे हैं ऐसे इन्सानोंसे॥
फिर तूफ़ानोंपर भी क़ाबू पा लोगे।
पहले टकराना सीखो तूफ़ानोंसे॥
दिलका रोना रोयें हम किसके आगे।
दुनिया ही अब ख़ाली है इन्सानोंसे॥
मैं भी 'खलिश' दुनियामें हूँ लेकिन इस तरह—
दूर हक़ीक़त हो जैसे अफ़सानोंसे॥

—शाइर जून १९५०

'ख़ामोश' गाज़ीपुरी

ख़ामोश वह आये हैं, हाथोंमें लिये दामन।
जब चश्मे-मुहब्बतमें बाक़ी न रहा आँसू॥

—बीसवीं सदी जुलाई १९५६

'ख़िज़ा' प्रेमी

किसीकी यह अदा कितनी भली मालूम होती है।
नज़र उठती नहीं, उठती हुई मालूम होती है॥

वही आपका तसव्वुर वही अश्ककी रवानी।
युँ ही बुझ गई उमंगें, युँ ही मिट गई जवानी॥

यह मैंने माना कि आज हर शयपै ज़िन्दगीका निखार-सा है।
न जाने क्यों यह हसीन मंज़र, मेरी निगाहोंपै बार-सा है॥

चलो आज जी भरके आँसू बहा लें।
यह तारोंभरी रात आये-न-आये ॥

ग़म एक इम्तहान था, इन्सानके लिए।
जो लोग अहले ज़ौक़ थे, वोह मुसकरा दिये ॥

'ख़ुमार' अंसारी एम० ए०

वतनमें ग़ुरबतो-फ़ाक़ाकशीका नाम न लो।
यह बेबसी ही सही, बेबसीका नाम न लो ॥

फ़सुर्दा गुलका, फ़सुर्दा कलीका नाम न लो।
भरी बहारमें पज़-मुर्दगीका नाम न लो ॥

ज़बान बन्द करो चुप रहो यह ठीक नहीं।
किसीका राज़ न खोलो किसीका नाम न लो ॥

ख़िरदसे दूर रहो आगहीसे दूर रहो।
ख़िरदका नाम न लो आगहीका नाम न लो ॥

बहुत ही ख़ूब है, यह शग़ले-मैकशी रिन्दो!
मगर ख़ुदाके लिए मैकशीका नाम न लो ॥

नज़रको ताब नहीं सुबहके उजालोंकी।
कुछ और ज़िक्र करो रोशनीका नाम न लो ॥

हम इस मताए-जहालतपै फ़ख्र करते हैं,।
हमारे सामने दानिशवरीका नाम न लो ॥

यह और बात कि ग़म ज़िन्दगीमें हो लेकिन।
यह मसलहत है ग़मे-ज़िन्दगीका नाम न लो ॥

खिज़ाँ रसीदह गुलोंको खबर न हो जाये।
चमनके साथ कभी ताज़गीका नाम न लो॥
हमारी खातिरे-नाज़ुकपै बार होता है।
हमें पसन्द नहीं सरकशीका नाम न लो॥
हमारा हुक्म है, शैतानकी करो तारीफ़।
'ख़ुमार' जुर्म है, यह, आदमीका नाम न लो॥

—बीसवीं सदी जून १९५६

बहुत मुल्तफ़ित हो, बहुत महर्बां हो।
तबाहीमें शायद कमी रह गई है॥
मुहब्बतकी पुरकैफ़ रातें कहाँ है।
सुलगती हुई चाँदनी रह गई हैं॥
'ख़ुमार' अहले-दुनियाको यह भी गराँ है।
जो लबपै ज़रा-सी हँसी रह गई है॥

—बीसवीं सदी जुलाई १९५६

'ख़याल' रामपुरी

बस अब चाके-गरेबाँ अहले-वहशत सी लिये जायें।
कहाँ तक मुसकराये जायें ग़ुञ्चे, गुल हँसे जायें॥
कभी दिल भी, मगर अब रूह भी बेचैन रहती है।
ख़ुदा जाने कहाँ तक उनके ग़मके सिलसिले जायें॥
न छेड़ें चारागर ज़ख़्मे-जिगरको, इक ज़रा ठहरें।
जब आँखें बन्द हो जायें तो टाँके दे दिये जायें॥
चमनसे फूल जाते हैं, तो काँटे क्यों रहें बाक़ी।
बहारें साथ लाईं थीं बहारें साथ ले जायें॥

मयस्सर आ गया है, आपका दामन मुक़द्दरसे ।
अब इतना ज़ब्त ही कब है कि, आँसू पी लिये जायें ॥
कहो अहले-चमन अब फिर बहारें आनेवाली हैं ।
नशेमनके लिए तिनके मुहैय्या कर लिये जायें ॥
'ख़याल' उसकी मशैय्यतमें किसीको दख़्ल ही क्या है ।
हमारा काम इतना है, कि हम कोशिश किये जायें ॥

—तहरीक अक्टूबर १९५४

'खुर्शीद' फ़रीदाबादी

आ जाये न उनकी निगहे मस्तपै इल्ज़ाम ।
ऐ दोस्त ! न कर तज़्करिए-गर्दिशे-ऐय्याम ॥

माना कि हर बहारमें पर टूटते रहे ।
फिर भी तवाफ़े-सहने-गुलिस्ताँ किये गये ॥
जितना वह लुत्फ़ हमपै फरावाँ किये गये ।
उतना ही हाल अपना परीशाँ किये गये ॥

इक राहे-मुस्तक़ीमपै थी गामज़न हयात ।
मुड़ने लगे तो उनसे मुलाक़ात हो गई ॥
जब दिलकी उस नज़रसे मुलाक़ात हो गई ।
लब सर-ब-मुहर रह गये और बात हो गई ॥

क़फ़स दूर ही से नज़र आ रहा है ।
क़यामत है अपनी बुलन्द आशियानी ॥

ग़नी अहमद 'ग़नी'

कुछ कम है आज ख़ैरसे बेताबिए-जुनूँ ।
तुम मेरे पास आओ कि मैं हाले-दिल कहूँ ॥
अल्लाह रे पर्दादारिए-उल्फ़तका माजरा ।
ख़ुद आसकूँ क़रीब न तुमको बुला सकूँ ॥

—निगार मार्च १६५८

'गुलज़ार' देहलवी

मौस्सर हादसे अर्ज़ो-समाके मुझपै क्या होते ?
मेरी फ़ितरतने सीखा ही नहीं मुश्किलसे डर जाना ॥

जहाँ इन्सानियत वहशतके आगे ज़िबह होती है ।
वहाँ ज़िल्लत है दम लेना, वहाँ बेहतर है मर जाना ॥

'जमील'-अख़्तर 'जमील' नज़मी

ख़बर भी है गुलो-लालासे खेलने वाले
पयामे-क़ैदो-असीरी है यह बहार नहीं ॥

—बीसवीं सदी अप्रैल १६५६

जमील

ख़ुश्क होते नहीं मेरे आँसू ।
बार-हा मुसकराके देख लिया ॥

हसरत ही रह गई कि जहाने-ख़राबमें ।
दो दिन तो ज़िन्दगीके ख़ुशीसे गुज़ारते ॥

उनकी ख़्वाहिश भी यही इश्क़का मंशा भी यही ।
अपनी हस्तीको बहरहाल मिटा देना था ॥

'ज़रीफ़' देहलवी

आज़ाद शाइरी[1]

पेड़ पर इक दुम कटी-सी फ़ाख़्ता
जैसे दौलतमन्द साहूकारकी वह दाश्ता

हुस्नके क़ज़्ज़ाक़ने जिसका खसोटा हो जमाल
सोगमें जो हुस्ने-रफ़्ताके मसेहरी पर पड़ी रोती रहे होकर निढाल

आह बेकस फ़ाख़्ता
याद आता है मुझे अपना शबाब

मैं समझता हूँ तेरे जज़्बात कहे जाते, तूफ़ाँ-ख़ेज़ो-आलम सोज़को
ग़म न कर

क्यों घुली जाती है रंजो-फ़िक्रके दरिया-ए-बे तूफ़ानों बे-अमबाज़में
इससे कुछ हासिल नहीं

बस समझले यह जवानी चलती-फिरती छाँव है
आई और फुर से उड़ी

—आजकल १५ जुलाई १९४६

'जलील' किदवई

क्या इससे भी पुरदर्द कोई होगा फ़साना ?
हम जानसे जाते रहे, और उसने न माना ॥

—निगार अप्रैल १९५२

---

१. मुक्तछन्द पर व्यंग ।

जाफ़री

[सर इक़बालकी मशहूर नज़्म—"सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा" की पैरेडी]

रहनेको गो नहीं है लाहौरमें ठिकाना।
चीनो-अरब हमारा, हिन्दोस्ताँ हमारा॥
रहते हैं उस मकाँमें छत जिसकी आस्माँ है।
ख़ंजर हिलालका है, क़ौमी निशा हमारा॥
दफ़्तर दिया है हमको छीन और झपटके ऐसा।
हम उसके पासबाँ हैं, वोह पासबाँ हमारा॥
जिनको मकाँ मिले थे, कहते थे उनसे चूहे।
"आसाँ नहीं मिटाना, नामो निशाँ हमारा॥"

पुराना कोट

बना है कोट यह नीलामकी दुकाँके लिए।
सिलाए-आम है याराने-नुक़्तादाँके लिए॥
बड़ा बुज़ुर्ग है यह आज़मूदाकार है यह।
किसी मरे हुए गोरेकी यादगार है यह॥
न देख कुहनियोंपर इसकी ख़स्ता सामानी।
पहन चुके हैं इसे तुर्क और ईरानी॥
जगह-जगहपै फिरा, मिस्ले-मारकोपोलो।
यह कोट, कोटोंका लीडर है, इसकी जय बोलो॥
बड़ा बुज़ुर्ग है यह, गो क़लील क़ीमत है।
मियाँ बुज़ुर्गोंका साया बड़ा ग़नीमत है॥

जगह-जगह जो यह कीड़ोंकी ज़र्बकारी है।
नई तरहकी यह सनअ़त है दस्तकारी है॥

जो क़द्रदाँ हैं, वोह जानते हैं क़ीमतको।
कि आफ़ताब चुरा ले गया है रंगतको॥

हैं इसपै धब्बे जो सुर्ख़ीके और सियाहीके।
निशान हैं किसी टीचरकी बादशाहीके॥

जगह-जगह जो यह धब्बे हैं और चिकनाई।
पहन चुका है कभी इसको कोई हलवाई॥

गुज़िश्ता सदियोंकी तारीख़का वरक़ है यह कोट।
ख़रीदो इसको कि इबरतका इक सबक़ है यह कोट॥

'ज़ावर' मुहम्मद क़ासिम

मुसकराहटसे यह हुआ ज़ाहिर।
दिलबरीमें है तू बड़ा माहिर॥

क्यों बुलाती है मौजए-दरिया।
डूबनेमें हूँ मैं ही क्या माहिर?

साथ मेरा न दे सके तारे।
चार झोंकोंमें सो गये आख़िर॥

अपनी संगीन गोद फैला दे।
मौत! आता है इस तरफ़ 'ज़ावर'॥

—आजकल १ दिसम्बर १९४९

'ज़ावर' फ़तहपुरी

क़फ़समें डाल दिया है सज़ा-जज़ाके मुझे।
करम किया कि सितम, आदमी बनाके मुझे ?

यह मानता हूँ कि बेशक गुनाहगार हूँ मैं।
ख़ता मुआफ़ ! मैं तेरी तरह ख़ुदा तो नहीं ॥

हज़ार ग़म सहे मैंने, हज़ार दुःख झेले।
मुसीबतोंसे मेरा दिल अभी बहा तो नहीं ॥

सज़ा-जज़ाके झमेलोंसे गर मिले फ़ुर्सत।
तो ग़ौर करना ब-आग़ोशे-ख़िलवते-वहदत ॥
लिबासे-नंग हूँ तेरा कि ज़ेवरे-ज़ीनत !
मगर है तनपै तेरे ख़िलअ़ते-रबूबीयत ॥

मेरे ख़ुदा तुझे अब यह भी सोचना होगा।
करम किया कि सितम आदमी बनाके मुझे ॥

'जिगर' रंगबहादुरलाल

यकसाँ जो हसीनोंकी तक़दीर 'जिगर' होती।
क्यों शमअ़ जली होती, क्यों फूल खिला होता ॥

खिले हैं फूल जो रोई है रातभर शबनम।
हँसी नहीं है हसीनोंका मुसकरा देना ॥

रिया नीयतमें थी, ज़ाहिदने गो सज्दोंमें सर मार. ।
सियह रूईका धब्बा रह गया, दाग़े-जबीं होकर ।।

'ज़िया' फ़तेहाबादी

ऐ नफ़स ! तेरी ख़ातिर सुबहो-शाम जीता हूँ ।
ज़िन्दगी ग़नीमत है, तेरे आने - जानेसे ।।
ज़िन्दगीके दर - परदा जाने क्या हक़ीक़त हैं ।
मौत जब कभी आती है तो किसी बहानेसे ।।
मैं तुझे भुला तो दूँ, क्या करूँ मगर इसको ।
ख़ुदको भूल जाता हूँ, तेरे याद आनेसे ।।
जब नये ज़मानेका ज़िक्र कोई करता है ।
ज़हनमें उभरते हैं वाक़ये पुराने-से ।।

—शाइर जनवरी १९५२

उनको अपना बना सकूँगा कि नहीं ।
उम्र इसी फ़िक्रमें गँवा दी है ।।
आलमे - वज्दो - बेख़ुदीमें तुझे ।
हमने आवाज़ बार - हा दी है ।।
कोशिशे अम्न तो बजा है मगर—
आदमी फ़ितरतन फ़िसादी है ।।

—आजकल १५ नवम्बर १९५२

मेरी आँखकी तुम नमीको न देखो ।
मेरे आलमे - बरहमीको न देखो ।।

मेरी ज़िन्दगीकी कमीको न देखो ।
मेरे पैकरे - मातमीको न देखो ॥
मैं इन्सानियतका कफ़न बेचता हूँ ।
ख़रीदो मुझे जानो - तन बेचता हूँ ॥

'जुरअत' सलाम जुरअत अंजनगाँवी

दिलोंमें सोज़े[१] - बेतासीर[२] क्यों है, हम नहीं समझे ।
हक़ीक़तकी ग़लत तफ़सीर[३] क्यों है, हम नहीं समझे ॥
मुसल्लिम हुस्नकी तौक़ीर[४] लेकिन वाक़या ये है ।
जुनूने-इश्क दामनगीर[५] क्यों है, हम नहीं समझे ॥
अगर महदूद थी उनकी तजल्ली चश्मे - मूसातक[६] ।
तो फिर जलवोंकी यह तशहीर[७] क्यों है, हम नहीं समझे ॥
मुहव्वतका ख़ुदा होना यक़ीनन है बजा लेकिन ।
मुहव्वत दर्दकी तफ़सीर[८] क्यों है, हम नहीं समझे ॥
ब-ज़ाहिर तो नहीं है, कोई भी 'बातिलका शैदाई[९] ।
गलेपर हक़के[१०] फिर शमशीर क्यों है, हम नहीं समझे ॥
हर - इक तव्दीर है आईनादारे रंगेनाकामी[११] ।
मुसलसल गर्दिशे तक़दीर[१२] क्यों है, हम नहीं समझे ॥

---

१. प्रेम-अग्नि, २. बेअसर, ३. सत्यका भ्रामक अर्थ, ४. सौन्दर्यकी गरिमा अक्षुण्ण, ५. प्रेम-उन्माद पल्ला पकड़े हुए, ६. उनका (खुदाका) जल्वा केवल मूसाके लिए सीमित था, ७. ईश्वरीय दर्शनकी विज्ञप्ति, पब्लिसिटी, ८. भाष्य, ९. आधिभौतिकताका, १०. आध्यात्मिकताके, ११. हर प्रयत्न असफलताका दर्पण है, १२. भाग्य चक्रमें निरन्तर ।

शिकायतए सुफ़ - क़रतासपर[1] हम ला नहीं सकते ।
अभी पाबन्दए - तहरीर क्यों है, हम नहीं समझे ।।
ज़मींपर भी सकूने-दिल जिन्हें मिलता नहीं 'जुरअत' !
मुख़ालिफ़ उनका चर्ख़ो-पीर क्यों है, हम नहीं समझे ।।

—आजकल नवम्बर १९५४

'ज़ेब' बरेलवी

दौराने-असीरी नज़रोंमें हरवक्त नशेमन रहता था ।
जब छूटके आये गुलशनमें हम अपना ठिकाना भूल गये ।
हम कैफ़े - नज़रके आलममें सरशारे-जमालेहस्ती थे ।
जब सामने जामे-मै आया हम जाम उठाना भूल गये ।।

—आजकल अक्तूबर १९५६

'जौहर' चन्द्रप्रकाश बिजनौरी

नामुकम्मिल ही रहती मेरी बन्दगी ।
वह तो कहिए तेरा आस्ताँ मिल गया ।।
ग़मने इस तरह की अश्कमें दिल दही ।
मैं यह समझा कोई महरबाँ मिल गया ।।

—बीसवीं सदी नवम्बर १९५६

तेरे बग़ैर ऐ जाने-तग़ाफ़ुल !
दिलकी हर धड़कन है अधूरी ।।
तुझको भुलाकर अब मैं समझा ।
तेरा ग़म था कितना ज़रूरी ।।

---

१. क़ाग़ज़पर ।

उनकी जफ़ाएँ ग़ैर इरादी ।
मेरी वफ़ाएँ ग़ैर शऊरी ॥
तेरा हँसना, तेरी ख़मोशी ।
रूहे - तबस्सुम, जाने-तकल्लुम ॥
पहली नज़रके उफ़ यह करिश्मे ।
जैसे हमेशा दोस्त थे हम-तुम ॥
यह मिलना भी कुछ मिलना था ।
उनको पाकर हो गये ख़ुद गुम ॥

—निगार मार्च १९५८

'तमकीन' सरमस्त

अब कुछ इस तरह बेक़रार है दिल ।
जैसे कोई सकून पा जाये ॥
एक हैं दोनों, यास हो कि उम्मीद ।
एक तड़पाये, एक बहलाये ॥
होश आया है बेख़ुदी लेकर ।
काश ऐसेमें तू भी आ जाये ॥
अब ख़ुशी भी गराँ गुज़रती है ।
कोई किस तरह दिलको बहलाये ॥
एक ऐसा भी है मुक़ामे-सकूँ ।
दिल जहाँ बेक़रार हो जाये ॥
आज है वजहे-ज़िन्दगी 'तमकीं' !
वही अरमाँ, जो बर नहीं आये ॥

—निगार दिसम्बर १९४९

'तमकीन' कुरैशी

दिल और वह भी टूटा हुआ दिल ?
अब ज़िन्दगी है, जीनेके क़ाबिल ?

जोशे-जुनूँमें यकसाँ हैं दोनों।
क्या गर्दे-सेहरा, क्या ख़ाके-मंज़िल ॥

ज़िन्दगी तेरे तसव्वुरसे अलग रह न सकी।
नग़मा कोई हो, मगर साज़ यही काम आया ॥

—आजकल दिसम्बर १९५२

'ताबिश' सुलतानपुरी

जहाँवाले न देखें इसलिए छुप-छुपके पीता हूँ।
ख़ुदाका ख़ौफ़ कैसा ? वह तो इसयाँपोश है साक़ी !

'तसकीन' मुहम्मद यासीन

कुछ और पूछिए यह हक़ीक़त न पूछिए।
क्यों मुझको आपसे है मुहब्बत, न पूछिए ॥

न जाने मुहब्बतमें क्यों है ज़रूरी।
वोह कुछ हसरतें जो कभी हों न पूरी ॥

मुझे अज़ीज़ सही ख़ाके-दिल मगर यह क्या ?
तुम्हींने आग लगाई तुम्हीं बुझा न सके ॥
वोह क्या करेंगे मदावाए-दर्दे-दिल-'तसकीं' ।
जो इक निगाहे-मुहब्बतकी ताब ला न सके ॥

इश्क़से पहले न समझे थे, ख़ुशी होती है क्या ?
क्यों चमकते हैं सितारे, चाँदनी होती है क्या ॥

कोई हँस रहा है, कोई रो रहा है ।
यह आख़िर क्या तमाशा हो रहा है ॥
मुहब्बतमें किसीकी क्या शिकायत ।
जो होता आ रहा है, हो रहा है ॥

लबपर तबस्सुम आँखोंमें आँसू ।
हम लिख रहे हैं, अफ़सानए-दिल ॥

—निगार अप्रैल १९५२

'तुर्फ़ा' .कुरेशी

लुटी-लुटी-सी हयाते-आलम, मिटा-मिटा-सा जहाँका नक़्शा ।
यह किसकी नज़रोंकी जुम्बिशोंपर, निज़ाम क़ायम है ज़िन्दगीका ॥

'तेग़' इलाहाबादी

ज़ंजीरें

अपने लुटनेका मुझको रंज नहीं ।
ग़म अगर है तो सिर्फ़ इसका है ॥
मेरे किरदारकी शराफ़तसे ।
उसने जो फ़ायदा उठाया है ॥

—शाइर जनवरी १९५२

'दर्द' सईदी टोंकी

निगहमें अंजामे-जुस्तजू है, क़दम भी आगे बढ़ा रहा हूँ।
नज़र मुक़द्दर ही पर नहीं है, ख़ुदाको भी आज़मा रहा हूँ॥
यह क्यों फ़िज़ापर है यास तारी, यह हर तरफ़ क्यों उदासियाँ हैं।
अभी तो अपनी तबाहियोंपर मैं आप भी मुसकरा रहा हूँ॥

आ गया सब्र जीते जी आख़िर।
दिलपर एक ऐसी चोट भी खाई॥
मौतकी लैमें इश्क़ने अक्सर।
दास्ताने-हयात दोहराई॥
क़िस्सए-ग़म जहाँसे दुहराया।
उम्रे-रफ़्ता वहींसे लौट आई॥

जब तक तेरा सितम न गवारा हुआ मुझे।
तेरा करम भी मेरे लिए नागवार था॥

—निगार मार्च १९४८

कुछ ऐसे गिर गये हैं किसीकी नज़रसे हम।
हों जैसे हर निगाहमें नामौतबर-से हम॥
अब उनके दरसे कोई ताल्लुक़ नहीं, मगर—
सर फोड़ते हैं आज भी दीवारो-दरसे हम॥
अक्सर बयाने-ग़ममें उलझे हैं इस तरह।
जैसे कि अपने हालसे हों बेख़बर-से हम॥

न वोह रास्ते हैं, न वोह मंजिलें हैं।
बदल ही दिया जैसे रुख़ ज़िन्दगीने॥

अभी आदमी आदमीका है दुश्मन।
अभी ख़ुदको समझा नहीं आदमीने॥
जहाँ सैकड़ों बुतकदे ढा दिये हैं।
ख़ुदा भी तराशे हैं कुछ बन्दगीने॥

—निगार दिसम्बर १९४७

रुबाइयात

रक़्क़ासए-तहज़ीबको[१] घुँगरू पहनाओ!
ईवाने-तमद्दुनके[२] दरो-बाम[३] सजाओ!
मुज़दा[४]! कि जना[५] है इशरताने[६] ऐटम[७]।
इन्सानकी अज़्मतो[८]! परचम[९] लहराओ!

यह हादिसए-अज़ीम[१०] भी गुज़र जाने दो!
दुनियाको तबाहियोंसे भर जाने दो!
कुछ फ़िक्र करो न इस दरिन्देके[११] लिए!
इस दौरके इन्सानको मर जाने दो।

इक हश्र सिमट रहा है, अपनी ही तरफ़।
तूफ़ान झपट रहा है अपनी ही तरफ़॥
कौनैनका[१२] दिल धड़क रहा है ऐ 'दर्द'!
इन्सान पलट रहा है अपनी ही तरफ़॥

—तहरीर नवम्बर १९५४

---

१. सभ्यता रूपी नर्त्तकीको, २. संस्कृति भवनके, ३. दर्वाज़े, मुँडेरें, ४. शुभसमाचार, ५. पैदा किया है, ६. पापोंने, ७. एटमबम, ८. मानवके गौरवों, ९. ध्वजा, १०. महान् दुर्घटनाएँ, ११. पशुके, १२. संसारका।

'दर्द' विश्वनाथ

जिनको आना था वह नहीं आये।
ढल रहे हैं, हयातके साये॥
वह अगर इल्तफ़ात फ़र्मायें।
दिल ग़मे-दहरसे न घबराये॥
अश्क पलकों पै झिलमिलाने लगे।
जब वह तनहाइयोंमें याद आये॥
है मुहब्बतसे इरतक़ाये-हयात।
कौन अहले-ख़िरद्को समझाये॥
हो जिसे ख़्वाहिशे-हयाते-दवाम।
कारज़ारे-हयातमें आये॥
ऐ ग़मे-दोस्त तुझको अपनाकर।
कौन दुनियाके ग़म न अपनाये॥

—तहरीक-अक्तूबर १६५४

'दीवाना' मोहनसिंह

गर्मिए क़ल्ब-ओ-रोशनिए-दिमाग़।
रहमते-हक़ हर-इक चराग़े-अयाग़॥
तंग दिल है, जहाने-तंग नज़र।
नहीं मुमकिन यहाँ कमाल फ़राग़॥
हाल तारीक तेरा मुस्तक़बिल।
रौशन इक तेरे नामका ही चराग़॥
पूछिए अन्दलीबे-नालाँसे।
क्या है, दरपर्दए-बहारे-बाग़॥

निकल आया हूँ दौरे - मजि़लसे।
फिर भी मंज़िलका ढूँढता हूँ सुराग़ ॥
कोयलें छुपके गीत गाती हैं।
क़ुल्लहे-कोहपर है, शोरिशे-ज़ाग़ ॥

—तहरीक सितम्बर १९४५

मिली शराब नज़रसे मगर नज़र न मिली।
जो मुल्तफ़ित[१] न हो साक़ी तो महरबानी क्या ॥
बदलनेवाला दिलोंका बजुज़[२] ख़ुदा है कौन।
फिर इन्क़लाबके नारोंके हैं मआनी क्या ॥
सवाब[३] डरसे किये और गुनाह लालचसे।
तफ़ू[४] है ऐसी जवानीपै यह जवानी क्या ॥
न कैफ़े-दर्द[५] न इरफ़ाने-ग़म[६] न हुस्ने-सलूक[७]।
बयाने-वाक़या हो महज़ तो कहानी क्या ॥
उधर जमालका नाज़ और इधर वफ़ाका ग़रूर।
जो कश-म-कशमें न गुज़रे वह ज़िन्दगानी क्या ॥
ख़लूसे-अश्कका उनको यक़ीन होके रहा।
हमारे सिद्क़के आगे थी बदगुमानी क्या ॥
लगाये फिरते हो यूँ दाग़को कलेजेसे।
शबाबे-रफ़्तार्की[८] है इक यही निशानी क्या ॥

---

१. कृपा करनेवाला, तवज्जह देनेवाला, २. ख़ुदाके सिवाय, ३. शुभकर्म, ४. लानत, ५. व्यथाका वर्णन, ६. दुःखोंकी कहानी, ७. सौन्दर्यका वृत्तान्त, ८. गुज़रे हुए यौवनकी।

सुना है महफ़िले-अग़ियार[1] तकमें चर्चा है।
'दिवाना' करता है बल्लाह ख़ुश बयानी क्या॥

—तहरीक अक्तूबर १९५६

दिनमें जितनी बार पी अलहम्द लिल्लाह कहके पी।
शुक्रे-नेमत हमसे जितना हो सका करते रहे॥
इक नहीं माँगी ख़ुदासे आदमीयतकी रविश।
और हर शैके लिए बन्दे दुआ करते रहे॥
दिलकी गहराईमें रखते हैं निशाते-सरगर्दा।
हम कि इस्तक़बाल हर करबो-बला करते रहे॥

'दुआ' डबाईवी

तजस्सुससे[2] झलक महबूबकी[3] देखी नहीं जाती।
दिखा देती है क़िस्मत ही कभी देखी नहीं जाती॥
मुहब्बत एक नेमत है, जिसे क़ुदरत अता[4] करदे।
कि इसमें कमतरी[5]-ओ-बरतरी[6] देखी नहीं जाती॥
क़यामत कलकी आती आज आ जाये तो राज़ी हूँ।
ख़ुदा शाहिद[7] है फ़ुर्क़तकी घड़ी देखी नहीं जाती॥
मुहब्बतमें अजलको[8] आहसे बहतर समझता हूँ।
मगर तौहीने-रस्मे आशिक़ी[9] देखी नहीं जाती॥
डरा हूँ इस क़दर नाकामिये-उम्मीदसे[10] अपनी।
वोह अब ख़ुश हैं, मगर उनकी ख़ुशी देखी नहीं जाती॥

---

१. शत्रुकी महफ़िलमें, २. प्रयास करनेसे, तलाशसे, ३. प्रियाकी झलक, ४. प्रदान, ५. हीनता, ६. महानता, ७. साक्षी, गवाह, ८. मृत्युको, ९. प्रेमपरम्पराका अपमान, बेइज़्ज़ती, १०. असफलतासे।

इलाही शिकवए-बेदादसे[1] मैं बाज़ आता हूँ।
कि मुझसे तो निगाहे-मुल्तजी[2] देखी नहीं जाती॥
यह कहकर दावरे-महशरने[3] मुझको ऐ 'दुआ' बख़्शा।
कि इस कम्बख़्तकी तरदामनी[4] देखी नहीं जाती॥

—आजकल जुलाई १९५४

'नकवी' क़ासिम बशीर

हम सहने-गुलिस्ताँमें अक्सर यह बात भी सोचा करते हैं।
यह आँसू हैं किन आँखोंके, फूलोंपै जो बरसा करते हैं॥
जीना हमें कब रास आया है, मरना हमें कब रास आयेगा?
हाँ सिर्फ़ तेरे ग़मकी ख़ातिर, हर जब्र गवारा करते हैं॥

—आजकल मार्च १९५३

'नक्श' सहराई

बताएँ तो बताएँ हम भला क्या?
मुहब्बत है मुहब्बतके सिवा क्या?
जफ़ाओंकी ख़ताओंका गिला क्या?
हर-इकसे होती आई है हुआ क्या?
अक़ीदेकी ही सब बातें हैं वरना।
यह मस्जिद क्या, हरम क्या, मैकदा क्या?
सफ़ीनेका नहीं, मुझको यह ग़म है।
जो शह दे नाख़ुदाको, वोह ख़ुदा क्या॥

---

१. अत्याचारोंकी शिकायतोंसे, २. नीची निगाहें, शर्मसार, ३. क़यामतके न्यायाधीशने, ४. मदिरासे भीगी पोशाक।

'नज़्म'

निगाहे-यास मेरी काम कर गई अपना ।
रुलाके उठ्ठे थे वोह, मुसकराके बैठ गये ॥

'नज़्म' मुज़फ्फ़रनगरी

चमनमें सुबहको पहली किरन जो लहराई ।
तो फ़र्शे-ख़्वाबपर अँगड़ाई तेरी याद आई ॥
तमाम उम्र उमीदे-बहारमें गुज़री ।
बहार आई तो पैग़ाम मौतका लई ॥
फ़िज़ाएँ रास न आयेंगी उसको साहिलकी ।
कि जिसने गोदमें तूफ़ाँकी परवरिश पाई ॥

—बीसवीं सदी अप्रैल १९५४

'नज़र' सेहरवी

ग़ज़ल

दिल हो जो दर्द-आश्ना तारे-नफ़स रूबाव है ।
नग़मा भी इक हदीस है, नाला भी इक किताब है ॥
अपने करमका वास्ता अपने करमको आम कर ।
मैं ही ख़राबे-ग़म नहीं सारा जहाँ ख़राब है ॥

—शाइर जुलाई १९५१

'नज़र' सहवारवी

हमेशा चश्मे-हसरत आबदीदा ।
मुहब्बत और इतनी ग़मरशीदा ?
न जाने रात क्या गुज़री चमनमें ।
सहरके वक़्त थे गुल आबदीदा ॥

इस फ़िक्रो-नज़रकी दुनियासे इन्साँका उभरना लाज़िम है।
गुल कैसे खिलेंगे आइन्दा ? आईने-गुलिस्ताँ क्या होगा ?

जुनूँ ही हर क़दमपै साथ देता है मुहब्बतका।
ख़िरदकी रहबरी, अन्देशए-सूदो-ज़ियाँ तक है॥

—निगार मई १९५२

ज़ाहिद न छेड़ रहमते-यज़दाँकी[1] गुफ़्तगू।
हम कर रहे हैं तजज़िये-अरहमन[2] अभी॥

ज़िन्दगीपर डाल ली, जिसने हक़ीक़त-बीं निगाह।
ज़िन्दगी उसकी नज़रमें बे-हक़ीक़त हो गई॥

—निगार अप्रैल १९५३

'नज़हत' मुज़फ़्फ़रपुरी

फरेबे-नज़र

दिलमें वह शर्मसार है अब तक।
ख़ुद-ब-ख़ुद बेक़रार है अब तक॥
इश्क़की यादगार है अब तक।
दिल मेरा दाग़दार है अब तक॥
हम पहुँच तो गये हैं मंज़िलपर।
जुस्तजूए-क़रार है अब तक॥
लाल-ओ-गुलकी चाक दामानी।
मेरी आईनए-दार है अब तक॥

---

१. ईश्वरकी दयालुताकी, २. शैतानका तज्ज़ुर्या, विश्लेषण।

दिले-मायूसको न जाने क्यों।
जैसे कुछ इन्तज़ार है अब तक॥
उनकी हर बात पर ख़ुदा जाने।
क्यों मुझे एतबार है अब तक॥
ज़ेर-लब कौन गुन - गुनाया था।
रूहे वक़्फ़े- ख़ुमार है अब तक॥
फ़स्ले-गुल आ गई मगर दिलको।
इन्तज़ारे-बहार है अब तक॥
टूट जाये न दिल कहीं 'नज़ाहत'।
यूरिशे-रोज़गार है अब तक॥

—शमअ़ मार्च १६५८

'नज़ीर' बनारसी

खा-खाके शिकस्त, फ़तह पाना सीखो।
गिरदाबमें क़हक़हा लगाना सीखो॥
इसी दौरे-तलातुममें अगर जीना है।
ख़ुद अपनेको तूफ़ान बनाना सीखो॥

ख़ुद होके तुलू सुबहए-नौ-पैदाकर।
ख़ुरशोद बन ऐ सुर्ख़ लकीरोंके फ़क़ीर॥

'नज़ीर' लुधियानवी

जब ख़ुद किया था अहदे-वफ़ा होके महरबाँ।
उस दिनको याद तेरी क़सम कर रहा हूँ मैं॥

एक बुतका हाथ हाथमें थामे हुए 'नज़ीर' !
किस शानसे तवाफ़े-हरम कर रहा हूँ मैं ॥

—आजकल मार्च १६४६

'नदीम' ज़ाफ़िरी

हम रो रहे थे अपनी असीरीको ऐ 'नदीम' !
इक और हमसफ़ीर तहे-दाम आ गया ॥

—निगार जून १६५७

'नफ़ीस' क़ादिरी

रहे-नियाज़में[१] क्योंकर वोह शादमाँ[२] गुज़रे ।
हयात पाके[३] जिसे ज़िन्दगी गराँ[४] गुज़रे ॥
जिन्हें था दिलसे इलाक़ा[५] न जिस्मो-जाँसे लगाव ।
नज़रके साथ कुछ ऐसे भी इम्तहाँ गुज़रे ॥
दिले-हज़ींको[६] तड़पनेका शौक़ था वर्ना ।
वोह लाख बार इधर होके महर्बाँ गुज़रे ॥
नये-नये थे मनाज़र[७] जो राहे-हस्तीमें[८] ।
क़दम-क़दमपै तमन्नाके कारवाँ[९] गुज़रे ॥
हमारे सामने आते हुए न शर्माओ ।
कहीं न देखने वालोंको कुछ गुमाँ[१०] गुज़रे ॥
इलाही ख़ैर कि उनका मिज़ाज बरहम[११] है ।
वोह आज होके बहुत मुझसे बद गुमाँ गुज़रे ॥

—निगार अप्रैल १६५४

---

१. प्रेम-मार्गमें, २. प्रसन्न, ३. ज़िन्दगी, ४. बोझल, ५. सम्बन्ध, ६. दुःखी हृदयको, ७. दृश्य, ८. जीवन-मार्गमें, ६. यात्रीदल, १०. शक, ११. बिगड़ा हुआ ।

हज़ार बार उठीं दिलमें नूरकी[1] मौजें[2] ।
जो एक बार तेरे ग़मसे ज़िन्दगी माँगी ॥

दिल ग़मे-दौराँसे था यकसर उदास ।
और फिर तुम भी मुझे याद आ गये ॥

जब तरीक़े-इश्क़के कुछ मरहले[3] तै हो गये ।
ज़िन्दगी सूदो-ज़ियाँ के[4] राज़[5] समझाने लगी ॥

वोह इज़्तराबे-शौक़में[6] शिद्दत[7] नहीं रही ।
क्या कह गई यह दिलसे तेरी चश्मे-इल्तफ़ात[8] ॥

ग़मो-अलमसे[9] थी मामूर[10] ज़िन्दगी अपनी ।
हज़ार शुक्र कि फिर भी तुझे भुला न सके ॥

हाय वह बेकसी मुआज़अल्लाह ।
जब तेरी याद तक नहीं आई ॥

—निगार जुलाई १९५२

'नफ़ीस सन्देलवी

.ख़ुदीको अपनी मिटा चुके हैं, अब अपनी हस्ती मिटा रहे हैं ।
हटाके रस्तेसे हम, यह पत्थर, क़रीब मंज़िलके जा रहे हैं ॥

---

१. प्रकाशकी, २. लहरें, ३. प्रश्न, समस्याएँ, ४. नफ़ा-नुक्सानके, ५. भेद, गुर, ६. प्रेमकी लगनमें, ७. तड़प, जोश, ८. कृपा-कटाक्ष, ९. दुःख-दर्दसे, १०. परिपूर्ण ।

हमारी हिम्मतकी दाद दे क्या, कि पस्त फ़ितरत है यह ज़माना।
जहाँ पै बिजली चमक रही है, वहीं नशेमन बना रहे हैं॥
यह शाख़ काटी, वह शाख़ काटी, इसे उजाड़ा, उसे उजाड़ा।
यही है शेवा जो बाग़बाँका, तो हम गुलिस्ताँसे जा रहे हैं॥
'नफ़ीस' के .जुहदे-इत्तक़ाकी, ज़माने भरमें थी एक शुहरत।
.खुदाकी क़ुदरत वह बुतकदेमें हरमसे तशरीफ़ ला रहे हैं॥

—बीसवीं सदी अक्टूबर १९५६

'नश्तर' हतगामी

जो सैयादने पूछा "क्या चाहते हो"?
"क़फ़स" कह गया आशियाँ कहते-कहते॥
जहाँ दास्ताँ-गोका रुकना सितम था।
वहीं रुक गया दास्ताँ कहते-कहते॥

—शाइर अप्रैल १९५०

'नसीम' शाहजहाँपुरी

तेरी निगाहने की मेरी दिलदही[1] अक्सर
यह तर्ज़े-पुरसिशे-ख़ामोश[2] कोई क्या जाने?
न पुरसिशोंकी तमन्ना[3], न आर्ज़ूए-करम[4]।
अब उन हदोंसे कुछ आगे हैं, तेरे दीवाने॥

---

१. सान्त्वना देना, पूछ-ताछ, २. हालचाल पूछनेका मूक ढंग, ३. खबरगीरीकी इच्छा, ४. कृपाकी इच्छा।

कहीं भी जी नहीं लगता 'नसीम' अब मेरा।
मैं किस फ़िज़ा-ए-परीशाँमें[1] हूँ ख़ुदा जाने॥

—निगार जुलाई १९५४

पए-सज्दा जबीं तड़पती है।
जब कोई नक़्शे-पा नहीं मिलता॥
पहले बरहम थे फूल गुलशनके।
अब मिज़ाजे-सबा नहीं मिलता॥
किससे कहिए 'नसीम' क़िस्सए-ग़म।
कोई दर्द आश्ना नहीं मिलता॥

—तहरीक अक्तूबर १९५४

'नसीम' मज़हर बी० ए०

ख़िज़ाँके दौरमें उसपर बहार आ जाये।
तेरी निगाहको जिसपर भी प्यार आ जाये॥
जो आपकी हो इनायत तो फिर मजाल नहीं।
मेरे क़रीब ग़मे-रोज़गार आ जाये॥
तुम्हीं तो बाइसे-बज़्मे-बहारे-आलम हो।
जिधर निगाह उठा दूँ बहार आ जाये॥
बुझाऊँ प्यास न सहबाये अश्क़से हरगिज़।
'नसीम' दिलपै अगर इख़्तियार आ जाये॥

—बीसवीं सदी अप्रैल १९५६

---

१. परेशानियोंके आलममें।

'नाज़िम' अज़ीज़ी सम्भली

आरिज़ो-.ज़ुल्फ़े-सियह-फ़ामसे आगे न बढ़ी।
ज़िन्दगी इन सहर-ओ-शामसे आगे न बढ़ी॥
क़ाबिले-फ़ख़्र है मेरी वह हयाते-शीरीं।
जो कभी तल्ख़िए-ऐय्यामसे आगे न बढ़ी॥
उस नवाज़िशपै तसद्दुक़ हैं दुआएँ सारी।
जो हमारे लिए दुश्नामसे आगे न बढ़ी॥
क्या कहूँ कर चुकी तै कितने मराहिल फिर भी।
ज़िन्दगी मआरिज़े-आलामसे आगे न बढ़ी॥
उस नज़रपै भी हैं, मशकूक निगाहें तेरी।
जो कभी तेरे दरो-बामसे आगे न बढ़ी॥
शुक्रिया इस तेरी ... नगहीका ऐ दोस्त!
जो हमारे दिले-नाकामसे आगे न बढ़ी॥
उस मुहब्बतपै अभीसे है निगाहे-दुनिया।
जो अभी नामा-ओ-पैग़ामसे आगे न बढ़ी॥
उस इबादतपै हैं मग़रूर बहुत मेरे गुनाह।
वह इबादत जो तेरे नामसे आगे न बढ़ी॥
हाये क्या कहिए मुहब्बतमें मेरी सई-ए-यक़ीन
बद गुमानीसे और औहामसे आगे न बढ़ी॥
हम तो उस बादाकशीके नहीं क़ायल 'नाज़िम'!
आज तक जो रविशे-जामसे आगे न बढ़ी॥

—बीसवीं सदी जून १९५६

'नाफ़अ़' रिज़्वी

यहाँ क्यों न मैं अपनी आँखें बिछा दूँ।
कि यह मेरे महबूबकी रह-गुज़र हैं॥
सितारोंका क़ायल हो किस तरह 'नाफ़अ़'।
किसी माहे-रुख़पर जब उसकी नज़र है॥

—बीसवीं सदी फरवरी १९५६

'नियाज़' मुहम्मद

सुर्ख़-सुर्ख़

सुर्ख़ शोले, सुर्ख़ आलम, सुर्ख़ देस।
सुर्ख़ औरत, सुर्ख़ मूरत, सुर्ख़ भेस॥
सुर्ख़ लीडर, सुर्ख़ थ्योरी, सुर्ख़ वेस।
सुर्ख़ ईवाँ, सुर्ख़ ज्यूवरी, सुर्ख़ केस॥
एक जहन्नुम मार्क्सकी जन्नतमें है॥

नाकपर ग़ुस्सा है, मुँहमें झाग भी।
लबपै अम्नो-आश्तीका राग भी॥
इस करमको है सितमसे लाग भी।
यानी जन्नत और उसमें आग भी॥
सख़्त ज़हमत, आतिशे-रहमतमें है॥

पसीना फूलोंको 'नैयर'! चमनमें आता है।
निगाह भरके जो काँटोंको देखता हूँ मैं ॥

करूँगा शेबमें[1] अंजामे-इश्क़पर भी नज़र।
अभी शबाब है, फ़ुरसत मुझे बहुत कम है ॥

जिसे कारवाँ छोड़कर बढ़ गया था।
वही गर्द अब कारवाँ हो रही है ॥

दिलसे गर्मो-सर्दका एहसास तक जाता रहा।
ज़िन्दगी यह है तो 'नैयर' मौत किसका नाम है?

—निगार अप्रैल १९५१

आशियाँका एक-इक तिनका अभी तो याद है।
भूलता जाऊँगा जो-जो दिन गुज़रते जायेंगे ॥

चमन वालोंको याद आया था मैं भी मौसमे-गुल्में?
बता ऐ नौ गिरफ़्तारे-क़फ़स! कुछ ज़िक्र था मेरा?

पड़े हैं जो मुन्तशिर[2] वोह तिनके उठा-उठाके सजा रहा हूँ।
ख़बर करे कोई बिजलियोंको कि फिर नशेमन[3] बना रहा हूँ ॥

—निगार नवम्बर १९५१

---

१. वृद्धावस्थामें, २. बिखरे हुए, ३. घोंसला।

प्रेम वार बाटनी

तेरे निखरे हुए जल्वोंने दी थी रोशनी मुझको।
तेरे रंगीं इशारोंने मुझे जीना सिखाया था॥
क़सम खाई थी तूने ज़िन्दगी भर साथ देनेकी।
बड़े ही नाज़से तूने मुझे अपना बनाया था॥
मगर पछता रहा हूँ अब तेरी बे-एतनाईपर।
कि मैंने क्यों मुहब्बतका सुनेहरा ज़ख़्म खाया था॥

तेरा पैकर, तेरी बाहें, तेरी आँखें, तेरी पलकें।
तेरे आरिज़, तेरी ज़ुल्फ़ें, तेरे शाने, किसीके हैं॥
मेरा कुछ भी नहीं इस ज़िन्दगीके बादा-ख़ानेमें।
यह ख़ुम, यह जाम, यह शीशे, यह पैमाने किसीके हैं॥
बनाया था जिन्हें रंगीन अपने ख़ूनसे मैंने।
वह अफ़साने नहीं मेरे वह अफ़साने किसीके हैं॥

किसीने सोने-चाँदीसे तेरे दिलको ख़रीदा है।
किसीने तेरे दिलकी धड़कनोंके गीत गाये हैं॥
किसी ज़ालिमने लूटा है, तेरे जल्वोंकी जन्नतको।
मगर मैंने तेरी यादोंसे वीराने सजाये हैं॥
कभी जिनपर मुहब्बतका तक़द्दुस नाज़ करता था।
वह यादें भी नहीं अपनी वह सपने भी पराये हैं॥

० किसे मालूम था मंज़िल ही मुझसे रूठ जायेगी।
लरज़कर टूट जायेंगे मेरी क़िस्मतके सैयारे॥
सरे-बाज़ार बिक जायेगी तेरे प्यारकी ग़ैरत।
चलेंगे अश्कके हस्सास दिलपर ज़ुल्मके आरे॥
बड़े अरमानसे मैंने चुना था जिनको दामनमें।
किसे मालूम था वह फूल बन जायेंगे अंगारे॥

० जहाँ तू है वहाँ हैं, नुक़रई साज़ोंकी झन्कारें।
जहाँ मैं हूँ वहाँ चीख़ें हैं, फरियादें हैं, नाले हैं॥
मेरी दुनियामें ग़म-ही-ग़म है तारीकी-ही-तारीकी।
तेरी दुनियामें नग़मे हैं, बहारें हैं, उजाले हैं॥
मेरी झोलीमें कंकर है, तेरी आग़ोशमें हीरे।
तेरे पैरोंमें पायल हैं, मेरे पैरोमें छाले हैं॥

० मैं जब भी ग़ौर करता हूँ, तेरी इस बेवफ़ाईपर।
तो ग़मकी आगमें महरो-वफ़ाके फूल जलते हैं॥
न फ़रियादोंसे ज़ंजीरोंकी कड़ियाँ टूट सकती हैं।
न अश्कोंसे निज़ामे-वक़्तके तेवर बदलते हैं॥
मैं भर सकता हूँ तेरी यादमें हसरत भरी आहें।
मगर आहोंकी गर्मीसे कहीं पत्थर पिघलते हैं?

—बीसवीं सदी अगस्त १९५६

मंज़िले-ज़ीस्त[1] मुझे मिल न सकी तेरे बग़ैर।
हर क़दमपर तुझे रुक-रुकके पुकारा मैंने॥

—आजकल अक्तूबर १९५६

गुल भी खिलते हैं शोला-ज़ारोंमें[2]।
कंकरोंमें गुहर[3] भी होते हैं॥
लोग कहते हैं जिनको दीवाने।
उनमें अहले-नज़र[4] भी होते हैं॥

ग़मे-दौराँ[5]! अरे ग़मे-दौराँ!!
इस जहाँमें हमें भी जीने दे॥
मै तो क़िस्मतमें ही नहीं लेकिन।
हमको अपना लहू तो पीने दे॥

क्या इसीको बहार कहते हैं।
ग़ौरसे देख ताइरे-नादाँ[6]॥
गुलसिताँमें तो खिल रही हैं क्यों।
आँसुओंसे उठ रहा है, धुआँ॥

दाद देती है गर्दिशे-दौराँ।
ज़िन्दगी एहतराम[7] करती है॥
इश्क़ जब मौतसे उलझता है।
मौत झुक कर सलाम करती है॥

—तहरीक दिसम्बर १९५६

१. जीवन-यात्राका स्थान, २. अंगारोंमें, ३. मोती, ४. पारखी, ५. संसारकी मुसीबतों, ६. भोले पक्षी, ७. इज़्ज़त।

मैं वह ग़म हूँ जिसे मुहब्बतने,
दिलकी गहराइयोंमें पाला है।

वह लताफ़त वह नाज़ुकी, वह नाज़,
वह तक़द्दुस वह ताज़गी हाये!

—बीसवीं सदी नवम्बर १६५६

जाने वालो

जीवनके अँधियारे पथपर मुझे अकेली छोड़ चले हो।
मुझसे कैसा दोष हुआ है मुझसे क्यों मुँह मोड़ चले हो।
क्यों मेरा दिल तोड़ चले हो?
चुप क्यों हो तुम कुछ तो बोलो, कुछ तो मेरा दोष बताओ।
रुक जाओ ऐ जाने वालो! रुक जाओ, रुक जाओ॥

ऐ निरमोही! ऐ हरजाई! तुम क्या जानो पीर पराई।
सोच रही हूँ पगले मनने तुमसे काहे प्रीत लगाई।
काहे प्रेमकी जोत जगाई?
प्रेमकी इस जोतीको प्यारे अपने हाथोंसे न बुझाओ।
रुक जाओ ऐ जाने वालो! रुक जाओ, रुक जाओ॥

कलियो, ग़ुञ्चो, फूलो, पत्तो, मस्त मनोहर मधुर बहारो!
नीले अंबरके आँचलपर झिल-मिल करते शोख़ सितारो।
मौसमके मदहोश नज़्ज़ारो!
तुम ही निरमोही साजनको मेरे दिलका हाल बताओ।
रुक जाओ ऐ जाने वालो! रुक जाओ, रुक जाओ॥

दूर खड़े हो, आओ आकर गोदमें अपनी मुझे उठा लो।
चंचल सपनोंकी वादीमें प्यार भरा संसार बसा लो।
मुझको अपने दिलमें छुपा लो॥
मेरे सपनोंके झूलोंमें झूलो-झूमो, नाचो गाओ।
रुक जाओ ऐ जानेवालो! रुक जाओ, रुक जाओ॥

—शमाअ फ़रवरी १९५८

'परवाज़' नसीर

तबाहीका मेरी आता है जब ज़िक्र,
तुम्हारा नाम लेता है ज़माना।
मेरे रोनेपै दुनिया हँस रही है,
हँसा गर मैं तो रो देगा ज़माना॥

तेरी निगाहने क्या कह दिया ख़ुदा जाने?
उलटके रख दिये बादाकशोंने पैमाने॥

—निगार मार्च १९५८

'परवेज़' प्रकाश नाथ

आइने

सर-ख़ुशीकी कफ़ील होती है।
इशरतोंकी दलील होती है॥
आप जिस वक़्त दिलमें होते हैं।
दिलकी दुनिया जमील होती है॥

थामा तो है दुआने इलाही असरका हाथ।
ले जाये अब दुआको न जाने असर कहाँ ?
अब भी उफ़क़से - ताब - उफ़क़ है जमाले-दोस्त।
फ़रहाँ मगर निगाहे-हक़ीक़त - निगर कहाँ ॥

—तहरीक अक्टूबर १९५४

'फ़ाख़िर' एजाज़ी

बे वफ़ा ! आख़िर तुझे अब और क्या मंज़ूर है ?
ज़ख़्म जो दिलमें है, वह रिसता हुआ नासूर है ॥
उसने इक दिन अपनी नज़रोंसे पिला दी थी शराब।
आज तक सरशार है दिल, आज तक मख़मूर है ॥
बे झिजक रूए-मुनव्वरसे उठा दो तुम नक़ाब।
क्यों तअम्मुल है तुम्हें, यह दिल भी कोई तूर है ॥
ऐ ख़ुशा ! वह सर कि जिसको तेरा सौदा हो गया।
ऐ ज़हे ! वह दिल कि जो ग़मसे तेरे मामूर है ॥
मुनहसिर है तेरी मर्ज़ी पर मेरी मर्गो-हयात।
अब मुझे मंज़ूर है वह जो तुझे मंज़ूर है ॥
इश्क़में इक रोज़ यह भी होगा क्या मालूम था।
दिल उन्हें भी भूल जानेके लिए मजबूर है ॥
तूने सोचा क्या है, आख़िर ऐ दिले-ख़ाना ख़राब !
किस क़दर बर्बादियोंपर, इस क़दर मसरूर है ॥
अल्लामाँ ! बे इख़्तियारी-ए-मुहब्बत अल्लामाँ।
इश्क़ तो मजबूर था, अब हुस्न भी मजबूर है ॥

कीजिए कुछ और रुसवाईके सामाँ कीजिए।
आपका 'फ़ाख़िर' अभी दुनियामें कम मशहूर है॥

—तहरीक नवम्बर १६५४

'फारुक़' बाँसपारी

तवाइफ़का घर

हमनशीं! बस चल यहाँसे दिलकी अब हालत है ग़ैर।
पड़ गये तलवोंमें छाले हो चुकी जन्नतकी सैर॥
ग़ौरसे रंगे-सराबे-जल्वए जानाना देख।
मेरी आँखें लेके यह गुलशननुमा वीराना देख॥
जौहरे-आईना जुज़ हुस्ने-जिला कुछ भी नहीं।
यह महल धोकेकी टट्टीके सिवा कुछ भी नहीं॥
हिचकियाँ लेती हुई महफ़िलमें यह तबलेकी थाप।
जैसे रह-रहके लगाये क़हक़हा धरतीका पाप॥
उफ़ यह सारंगीकी तानें बज़्मे-महसूसात में।
चीख़ता हो जैसे दोज़ख़ पर्द-ए-नग़मात में॥
घुँघरुओंकी छम-छमा-छम रक़्सकी सरमस्तियाँ।
यह फ़राज़े-बाम यह औरतकी ज़हनी पस्तियाँ॥
जिन्सका नीलाम घर, यह शाहराहे-आम पर।
आह यह इस्मतके मोती कौड़ियोंके दाम पर॥
होश आता है, मरीज़ाने-हविसको दैरमें।
कितने घर वीराँ हुए इन वस्तियोंके फेरमें॥
शामके साँचेमें सुबहें आके ढलती हैं यहाँ।
रातकी तारीकियाँ सोना उगलती हैं यहाँ॥

मअ़सियतकी शाहज़ादी यह कनीज़े-अहरमन।
जैसे फूलोंका जहन्नुम, जैसे काँटोंका चमन॥
दुश्मने - तस्कीने - जाँ ग़ारत गरे - सब्रो - शिकस्त।
एक ग़म-अफ़ज़ा हक़ीक़त एक दिल-ख़ुश-कुन फ़रेब॥
पैकरे - तहरीरमें इक क़िस्सए - नागुफ़्तनी।
सीधी सादी-सी इबारत और हर्फ़ोंकी बनी॥
उफ़ यह आदम ज़ाद-बे-परकी परी, अफ़सूँ शआ़र।
अपने आ़मिलको जो ख़ुद लेती है शीशेमें उतार॥
यह नज़र अफ़रोज़ रुख़सारोंके बे सहबा ज़रूफ़।
यह ख़ते - गुलज़ारके पर्दोंमें काँटोंके हरूफ़॥
आह यह शानोंपै लहराते हुए ज़ुल्फ़ोंके नाग।
जिनके चलते लुट चुके हैं, कितनी बहनोंके सुहाग॥
हश्रज़ा अँगड़ाइयाँ नीची नज़र अन्फ़ास तेज़।
उफ़ यह अज्ने-पेश दस्ती उफ़ यह मस्नूई गुरेज़॥
देखकर गाहककी मतवाली निगाहोंका झुकाव।
तनका पीतल बेचती है, रातको सोनेके भाव॥
यह जवानीका चमन यह हुस्ने - सूरतका निखार।
मुनहसिर दो क़ाग़ज़ी फूलोंपै है, जिसकी बहार॥
ज़र-ब-कफ़ महमाँकी जानिब दिल ब-कफ़ बढ़ती है यह।
मेज़बानीका लड़कपनसे सबक़ पढ़ती है यह॥
ख़िल्वते - ग़मके अँधेरेमें उजाला मिल गया।
इसकी चाँदी है जो कोई सोनेवाला मिल गया॥
होशपर क़ब्ज़ा जमाकर ज़हर-आगीं प्यारसे।
काट लेती है यह जेबें आँसुओंकी धारसे॥

आह यह फ़ौलाद सीरत नुक़रई बाहोंका लोच।
सादा लोहोंको जो ऐय्यारीसे लेता है दबोच॥
उफ़ यह बिन ब्याही सुहागन, ज़िन्दातन मुर्दा ज़मीर।
मासियतका जैसे रंगीं वाहिमा सूरत पज़ीर॥
इक नज़रमें जेबकी तह तक पहुँच जाती है यह।
मालका अन्दाज़ा करके भाव बतलाती है यह॥
गीत सावनका नहीं नादाँ यह दीपक राग है।
ढल गया जब आँखका पानी तो औरत आग है॥

—आजकल मई १९५७

'फ़िज़ा' कौसरी

जिस दीदकी हसरतमें ऐ दिल! इक उम्र बसर हो जाती है।
उस दीदका सामाँ होते ही बेकार नज़र हो जाती है॥
उम्मीद सहारा देती है, जब मायूसीके आलममें।
हर रातकी ज़ुल्मतसे पैदा तनवीरे-सहर जो जाती है॥
कलियाँ-सी चटकती हैं दिलमें, एहसास महकने लगता है।
फ़ैज़ाने-तसव्वुर क्या कहने, शादाब नज़र हो जाती है॥
यह इश्के-ख़राब अहवाल कभी एजाज़ दिखाता है यूँ भी।
कहता था ज़माना ऐब जिसे, वह बात हुनर हो जाती है॥
इस इक लमहेमें क्या कहिए क्या दिलका आलम होता है।
जब मेरी फ़ुग़ाने-नीम-शबी मायूसे-असर हो जाती है॥
हर दर्द दिया करती है 'फ़िज़ा' आग़ाज़में उल्फ़त ही दिलको।
उल्फ़त ही बिल-आख़िर तस्कीने-हरदर्दे-जिगर हो जाती है॥

—तहरीक अक्टूबर १९५९

'बाक़ी' सिद्दीक़ी

जो दुनियाके इल्ज़ाम आने थे आये।
बहुत ग़मके मारोंने पहलू बचाये॥
न दुनियाने थामा न तूने सम्भाला।
कहाँ आके मेरे क़दम डगमगाये॥
किसीने तुम्हें आज क्या कह दिया है।
नज़र आ रहे हो, पराये-पराये॥
मुलाक़ातकी कौन-सी है यह सूरत।
न हम मुसकराये न तुम मुसकराये॥
उलझते हैं हर गामपर ख़ार 'बाक़ी'।
कहाँ तक कोई अपना दामन बचाये॥

सफ़रका हौसला लाते कहाँसे।
इरादा करते-करते हो गई शाम॥
यह कैसी बेख़ुदी है, लिख गया हूँ।
मैं अपने नामके बदले तेरा नाम॥

—माहे नौ मार्च १९५२

आदाबे-चमन भी सीख लेंगे।
ज़िन्दाँसे अभी निकल रहे हैं॥
फूलोंको शरार कहनेवालो!
काँटोंपै भी लोग चल रहे हैं॥

'बासित' भोपाली

उस ज़ुल्मपै कुर्बां लाख करम, उस लुत्फ़पै सदक़े लाख सितम।
उस दर्दके क़ाबिल हम ठहरे, जिस दर्दके क़ाबिल कोई नहीं॥
क़िस्मतकी शिकायत किससे करें, वोह बज़्म मिली हैं हमको, जहाँ—
राहतके हज़ारों साथी हैं, दुःख दर्दमें शामिल कोई नहीं॥

कुछ-न-कुछ हुआ आख़िर दौरे-आस्माँ अपना।
ढूँढ़ने चले उनको मिल गया निशाँ अपना॥

तौबा यह मंज़िले-वीराने-मुहब्बत तौबा।
वोह नहीं, मैं नहीं, नज़्ज़ारा नहीं, होश नहीं॥

याँ यह वफ़ूरे-बे-ख़ुदी, वाँ वोह ग़रूरे-दिलबरी।
फ़िक्र किसे सवालकी, होश किसे जवाबका॥

—निगार दिसम्बर १९४६

मुशाहदातकी मंज़िल है, ताहदे-इदराक।
ख़िरद सकूतमें है, मसलहतन गिरेबाँ चाक॥
जहाने-नूरको देखा है, मैंने सर-ब-सजूद।
जहाँ-जहाँसे नुमायाँ हुई हक़ीक़ते-ख़ाक़॥
तुम्हारे-हुस्ने-तमन्ना-तलबने क्या पाया।
अगर निगाहे-मुहब्बत न हो सकी बेबाक॥
अभी तक उसको सरिश्के-हयात धो न सकी।
कभी ख़ुशीने मली थी जो मेरे मुँहपर ख़ाक॥
न पी सकें तो बहारे-चमनपै क्या इल्ज़ाम।
मए-हयात तो ढलती रही हैं, ताक-ब-ताक॥

ख़िज़ाँ से शिकवः-ऐ-बरबादिए-चमन भी दुरुस्त ।
मगर बहारने गुलशनमें जो उड़ाई ख़ाक ॥
चमनमें हमने बनाया है, आशियाँ 'बासित' !
हमीं समझते हैं, कुछ क़ीमते-ख़सो-ख़ाशाक ॥

—आजकल अक्टूबर १९५६

बिस्मिल आज़मी

ग़मे-दिलकी लाख सऊबतें हों, मगर तू नाला-बलब न हो ।
कोई आदमी है, वह आदमी जिसे ताबे-रंजो-तअब न हो ॥
मुझे क्यों कशाकशे-ज़िन्दगीसे निजात मिल न सकी कभी ।
तेरी दूरी हुस्ने-अज़ल ! कहीं ग़मे-ज़िन्दगीका सबब न हो ॥
मेरी ख़ुदसरी भी मुसल्लमा तेरी बरहमी भी बजा मगर ।
सरे-हश्र जब्रकी दास्ताँ मैं कहूँ जो तर्के-अदब न हो ॥
तुझे 'बिस्मिल' एक निगाहे-महरपै क्यों ग़रूर है इस क़दर ?
तेरा हश्र क्या हो ख़बर भी है, वह निगाहे-महर जो अब न हो ॥

—शाइर जून १९५१

'बिस्मिल' सईदी हाशमी

अन्दाज़े-जुनूँ इश्क़के अब जा नहीं सकते ।
तुम भी दिले-बेताबको समझा नहीं सकते ॥

अब दिलसे किसी वक़्त उभर आते हैं 'बिस्मिल' ।
वोह अश्क जो आँखोंमें नज़र आ नहीं सकते ॥
हर बुलन्दो-पस्तको इस तरह ठुकराता हूँ मैं ।
कोई यह समझे कि जैसे ठोकरें खाता हूँ मैं ॥

देख सकता ही नहीं अव्वल तो मैं उनकी तरफ़ ।
देख लेता हूँ तो फिर देखे चले जाता हूँ मैं ॥

इलाही दुनियामें और कुछ दिन, अभी क़यामत न आने पाये ।
तेरे बनाये हुए बशरको अभी मैं इन्साँ बना रहा हूँ ॥

कहते हैं मुहब्बत फ़क़त उस हालको 'बिस्मिल' !
जिस हालको उनसे भी अक्सर नहीं कहते ॥

नहीं अपने किसी मक़सदसे ख़ाली कोई भी सजदा ।
ख़ुदाके नामसे करता है इन्साँ बन्दगी अपनी ॥

ठोकर किसी पत्थरसे अगर खाई है मैंने ।
मंज़िलका निशाँ भी उसी पत्थरसे मिला है ॥

तुम न होते अगर ज़मानेमें ।
किससे उठता सितम ज़मानेका ॥

ख़ुदाके बन्दे भी कावेमें अब नहीं मिलते ।
सनमकदेमें ख़ुदा भी बनाये जाते हैं ॥

आती है हर तरफ़से सदाए-दरा मुझे ।
किन मरहलोंमें छोड़ गया क़ाफ़िला मुझे ॥

मायूसियोंके बाद भी तो कुछ यह हाल है ।
बैठा हुआ हूँ जैसे अभी इन्तज़ारमें ॥

—निगार मार्च १९५४

तुम अपने क़ौल, तुम अपने क़रार याद करो।
और उनपै फिर मेरा वोह एतबार याद करो॥

भुला चुके सो भुला ही चुके वोह अब 'बिस्मिल'।
हज़ार याद दिलाओ हज़ार याद करो॥

उनके फ़रेबे-लुत्फ़के दिन भी गुज़र गये।
अब मुतमइन हैं, अपने ग़मे-मौतबरसे हम॥

बैठें तो किस उम्मीदपै, बैठे रहें यहाँ?
उट्ठें तो उठके जाएँ कहाँ तेरे दरसे हम?

दुहराई जा सकेगी न अब दास्ताने-इश्क़।
कुछ वोह कहींसे भूल गये हैं कहींसे हम॥

'बिस्मिल' शाहजहाँपुरी

ख़ुदा मालूम? मूसा तूरसे क्यों बेक़रार आये?
मेरी मंज़िलमें ऐसे मरहले तो बेशुमार आये॥

वोह साक़ी जिसकी आँखोंपर फ़रिश्तोंको भी प्यार आये।
अगर नज़रें उठा दे चश्मे-फ़ितरतमें ख़ुमार आये॥

बिहार कोटी

क़फ़स बक़ौशररकी ज़दसे बाहर ही सही लेकिन।
गुलिस्ताँ फिर गुलिस्ताँ है, नशेमन फिर नशेमन है॥

वहीं हज़ारों बहिश्तें भी है ख़ुदा - बन्दा!
सिसक-सिसकके कटी ज़िन्दगी जहाँ मेरी॥

कुछ अपने एतमादे-नज़रसे भी काम ले।
चल कारवाँके साथ, मगर राहबरसे दूर ॥
यह अपने-अपने ज़र्फ़े-तमन्नाकी बात है।
वरना चमन क़रीब था, वीराना घरसे दूर ॥
अब नाख़ुदापै छोड़ उसे या ख़ुदापै छोड़।
साहिलसे दूर है न सफ़ीना भँवरसे दूर ॥
ख़ुश ऐतमादियोंका सताया हुआ हूँ मैं।
जब भी लुटा, लुटा हूँ, रहे-पुरख़तरसे दूर ॥

—शाइर जनवरी १६५३

लाता है रंग जज़्बे-मुहब्बत कभी-कभी।
उनपर भी टूटती है क़यामत कभी-कभी ॥

—शाइर सितम्बर १६४६

'मख़्मूर' सईदी

दिल तुम्हारा हमसे बरहम, बदज़न अपने दिलसे हम।
कोई आलम हो कहीं अब दिल बहलता ही नहीं ॥
तेरे कूचे तक पहुँचनेमें पड़ीं सौ मंज़िलें।
बे-नियाज़ाना[1] गुज़र आये हर-इक मंज़िलसे हम ॥
ज़िन्दगी है, सिर्फ़ शायद एक मौजे-बेक़रार।
बारहा लौटे हैं तूफ़ाँकी तरफ़ साहिलसे हम ॥
किस क़दर दूर आ चुके हैं तेरी महफ़िलसे मगर—
किस क़दर नज़दीक हैं अब तक तेरी महफ़िलसे हम ॥

---

१. निरपेक्ष भावसे।

दीदनी[1] है यह जनूने-शौक़की वा-रफ़्तगी[2] ।
पूछते हैं अपनी मंज़िलका पता मंज़िलसे हम ॥
अब कहाँ वह नग़मे-हाए साज़े-हस्तीका[3] फ़सूँ ।
चौंक उठे 'मख़मूर' आवाज़े-शिकस्ते-दिलसे[4] हम ॥

—तहरीक अगस्त १६५५

शम-ए - जुनूँ जलाओ कि राहे - हयातपर ।
अब गुम रहाने-अक़्लको कुछ सूझता नहीं ॥

न अमन है, न सकूँ है, न चारए-ग़म है ।
तुम्हारी बज़्मे-तरबका अजीब आलम है ॥
वह सर ज़मीं कि जिसे रश्के-ख़ुल्द[5] कहते हो ।
ख़ता मुआफ़ दहकता हुआ जहन्नुम है ॥

—तहरीक अगस्त १६५६

ऐतराफ़

आज फिर दिलसे तेरी याद उभर आई है ।
सर्द पलकोंपै सुलगता हुआ आँसू बनकर ॥

एक मुद्दतसे जिगरसोज़ शरारे ग़मके ।
मैंने ख़ाकिस्तरे-माज़ीमें दबा रक्खे थे ॥
तेरी चाहतके दिये, तेरी तमन्नाके चिराग़ ।
वक़्तकी तुन्द हवाओंने बिछा रक्खे थे ॥

---

१. देखने योग्य, २. उन्मादका दौर, ३. जीवन-वीणाका संगीत, ४. दिल टूटनेकी आवाज़से ५. जन्नतकी ईर्ष्यायोग्य [रूसकी तरफ संकेत है।]

फ़ितरते-इश्कके आईन-ए - बेलौसीपर।
पर्दए-हिर्सो-हविस डाल दिया था मैंने ॥
एक अँधेरेमें नज़र डूब गई थी मेरी।
एक तारीक नक़ाब ओढ़ लिया था मैंने ॥

नित नये शग़ल तराशे मेरी गुमराहीने।
गिरयए-नीम शबी था न अब आहे-सहरी ॥
आप मैं अपनी निगाहोंसे हुआ था ओझल।
लेके पहुँची थी कहाँ मुझको मेरी कम नज़री ॥

हर क़दम पर मेरे सज्दोंकी पनाहगाहें थीं,
अनगिनत बुत थे तसव्वुरके सनमख़ानों में।
आज़ू छोड़ चुकी थी तेरी महफ़िलका ख़याल,
शौक़ आसूदा था अंजान शबिस्तानों में ॥

तुझसे मैं दूर बहुत दूर चला आया था!
तू मगर इतनी क़रीं है मुझे मालूम न था।
चन्द लमहोंको जो सीनेमें भड़ककर रह जाय,
इश्क़ वह आग नहीं है मुझे मालूम न था ॥

आज फिर दिलसे तेरी याद उभर आई है।
सर्द पलकोंपै सुलगता हुआ आँसू बनकर ॥

'मख़मूर' देहलवी

हुजूमे-यासमें अश्कोंने आबरू रखली।
उन्हींसे दिलकी लगीको बुझा लिया मैंने॥
यह कायनात जिसे सुनके झूम-झूम गई।
वह नग़मा सोज़ - मुहब्बतपै गा लिया मैंने॥
बहुत ही दिलके अँधेरेसे दम उलझता था।
चिराग़े - दाग़े - मुहब्बत जला लिया मैंने॥
उस आस्ताँकी बलन्दीका क्या ठिकाना है।
बसद नियाज़ जहाँ सर झुका लिया मैंने॥
मैं उसके वादेका अब भी यक़ीन करता हूँ।
हज़ार बार जिसे आज़मा लिया मैंने॥
कोई समझ न सका मुझपै क्या गुज़रती है।
कुछ इस तरहसे तेरा ग़म छुपा लिया मैंने॥
सिवाये दाग़े-तमन्ना क़िसीको कुछ न मिला।
कोई बताये कि दुनियासे क्या लिया मैंने॥
ग़मे-हयातसे 'मख़मूर' लोग डरते हैं।
इसे तो अपनी तमन्ना बना लिया मैंने॥

बीसवीं सदी अप्रैल १९५६

'मंज़र' सिद्दीक़ी अकबराबादी

जी सके इन्सान बेख़ौफ़ो-ख़तर ऐसा तो हो।
हो अगर नज़्मे-निज़ामे बहरो-बर ऐसा तो हो॥
हुस्न भी हो माइले-परवाज़ सहराकी तरफ़।
कम-से-कम इक मौसमे-दीवानागर ऐसा तो हो॥

—शाइर जनवरी १९४३

फूलोंसे जो खेला करते थे, दर-दरकी ठोकर खाते हैं।
जीनेकी तमन्ना थी जिनको, अब जीनेसे घबराते हैं॥
इस दरजा बिगाड़ा है ख़ुदको, इस दौरके आदमज़ादोंने।
इन्सान तो है फिर भी इन्साँ, हैवानोंको शरमाते हैं॥

'मग़मूम' कृष्ण गोपाल

कभी तो हम अपने राज़े-दिलको ज़बाँ पै लाना भी चाहते हैं।
कभी यह आलम कि ख़ुद उन्हींसे इसे छुपाना भी चाहते हैं॥
अगर सरे-राह इत्तफ़ाक़न वह मिल गये तो हमने देखा।
वह हमसे नज़रें बचा-बचाकर नज़र मिलाना भी चाहते हैं॥
सितम-तराज़ी तो उनकी बरहक़ मगर यह दुहरा सितम तो देखो ?
हमारे दिलको दुखा-दुखाकर वह मुसकराना भी चाहते हैं॥
मिज़ाजका यह हसीं तलव्वन है कितना जाँबख़्श कितना प्यारा !
वह हमसे दूरी भी चाहते हैं, क़रीब आना भी चाहते हैं॥
नज़र-नज़रको शबाबे-नौके हसीन जल्वे दिखा-दिखाकर।
वह अपनी ज़ुल्फ़ोंके पेचो-ख़मसें हमें फँसाना भी चाहते हैं॥
जमील दावे हसीन वादे न जिनकी तकमील होने पाई।
वह उनसे बेगाना होके यकसर उन्हें भुलाना भी चाहते हैं॥
वह सर्द महरीसे बख़्शते हैं हमारी उल्फ़तको पायदारी।
हमारे जज़्बे-वफ़ाको शायद वह आज़माना भी चाहते हैं॥
जनाबे 'मग़मूम' कैसी तौबा ? उठाओ साग़र शराब उँडेलो।
वह आप पीना भी चाहते हैं, तुम्हें पिलाना भी चाहते हैं॥

—शमअ मार्च १९५७

'मज़हर' इमाम

निगाहे-लुत्फ़के[1] सदक़े[2], यक़ीं यह होता है।
कि जैसे मुझमें किसी बातकी कमी न रही ॥
यह और बात है, .ज़ुल्फ़े-हयात[3] बरहम[4] है।
मिज़ाजे-दोस्तमें लेकिन वह बरहमी न रही ॥
अजीब सिलसिलए - क़हरो-लुत्फ़े-.ख़ूबाँ[5] है।
बुझी तो शमए-तमन्ना मगर बुझी न रही ॥
है कारवाँ अभी मंज़िलसे दूर ही लेकिन।
यह कम नहीं है, कि रहज़नकी[6] रहबरी, न रही ॥

—निगार मई १९५७

'मशहूद' मुफ़्ती

बोल सुहाने मीठे बोल।
विष-सागरमें अमृत घोल ॥
सोने वाले आँखें खोल।
जाती घड़ियाँ हैं, अनमोल ॥
मनके गन्दे उजले तन।
लोहे पर सोनेका ख़ोल ॥
खोकर दिल अब समझा है।
कितने मीठे थे वह बोल ॥

---

१. कृपापूर्ण दृष्टि, आनन्दमयी चितवनके, २. न्योछावर, ३. ज़िन्दगी-रूपी ज़ुल्फ़, ४. उलझी, ५. सुन्दरियोंकी कृपा और क्रोधका बर्ताव, ६. लुटेरोंका, ७. नेतृत्व, पथ-प्रदर्शकपन।

साहिलके दिलमें है, क्या।
तूफ़ानोंकी नब्ज़ टटोल ॥
होंटोंके पहरोंपै न जा।
तुझसे बनें आँखोंसे बोल ॥
दुनियाको 'मशहूद' समझ।
दुनिया है, उक़बाका मोल ॥

—शाइर अक्तूबर १९५१

'मशीर' झिझानवी

उसको न पा सकेगी तुम्हारी नज़र कहीं।
होती है, जिसकी शाम कहीं और सहर कहीं ॥
यह हादसाते-इश्क़[1] नहीं है तो और क्या।
मंज़िल कहीं हैं, दिल है कहीं, राहबर[2] कहीं ॥
ऐ इश्क़ उनकी चश्मे-इनायतसे[3] होशियार।
धोका न दें यह शेवए-ना-मौतबर[4] कहीं ॥
कल तक ग़मे-हयातसे[5] उकता रहे थे हम।
अब ग़म यह कि ज़ीस्त[6] न हो मुख़्तसिर कहीं ॥
ऐ दिल! न लज़्ज़ते-ग़मे-पिनहाँ[7] बयान कर।
ख़ुद ही तड़प उठे न तेरा चारागर[8] कहीं ॥
अब तक मैं बन्दगीमें तआय्युन[9] न कर सका!
दिल है, कहीं, जबीं[10] है कहीं, और नज़र कहीं ॥

---

१. प्रेम संबंधी घटनाएँ, २. मार्ग बतानेवाला, ३. कृपाकटाक्षोंसे, ४. अविश्वासी, ५. ज़िन्दगीके दुःखोंसे, ६. उम्र, ज़िन्दगी, ७. छिपे दुःखका आनन्द, ८. चिकित्सक, ९. स्थिरता, १०. मस्तक।

सब उनको देखते हैं, मुझे देखनेके बाद।
कुछ और कह न दे यह मेरी चश्मे-तर[1] कहीं॥
मुझको यह लज़्ज़ते-ख़लिशे-दिल[2] हराम हो।
मैंने तुम्हारा नाम लिया हो अगर कहीं॥
वह और तुझको लज़्ज़ते-आज़ार[3] बख़्श दें।
यह भी न हो 'मशीर' फ़रेबे-नज़र[4] कहीं॥

—निगार अगस्त १९५४

बदल सकता हूँ उसका रुख़, मगर यह सोचकर चुप हूँ।
तुम्हारा नाम लेकर गर्दिशे-ऐयाम[5] आती है॥

—निगार नवम्बर १९५१

''मजाज़ लोदी अकबराबादी

यह राहे-मुहब्बत है धोका न खाना।
क़दम जो उठाना सम्भलकर उठाना॥
अगर ख़ुदनुमाईसे फ़ुरसत कभी हो!
मेरे ग़मकदेमें भी तशरीफ़ लाना॥

'महशर'

मुद्दतें हो गईं हैं चुप रहते।
कोई कहता तो हम भी कुछ कहते॥

---

१. अश्रु-पूर्ण आँखें, २. हृदयमें चुभनका आनन्द, ३. दुःख सहनेमें जो आनन्द आता है, ४. आँखोंका धोका, ५. संसारकी विपदाएँ।

महमूद अयाज़ बंगलोरी

मुझे जिनके दीदकी आस थी, वह मिले तो राहमें यूँ मिले।
मैं नज़र उठाके तड़प गया, वोह नज़र झुकाके निकल गये॥
यह ख़बर भी है तेरा संगेदर, जिन्हें दो जहाँसे अज़ीज़ था।
वही अहले-दर्दके कारवाँ, तेरी रहगुज़रसे निकल गये॥

निशाते-ज़ीस्तके धोकोंपर आँख भर आई।
कहाँ पहुँचके तुम्हारे करमकी याद आई॥
तेरा ख़याल नहीं, तेरा ग़म नहीं लेकिन।
बिछुड़के तुझसे हमें ज़िन्दगी न रास आई॥

दिलको अभी शऊरे-निशातो-अलम न था।
वरना तेरे फ़िराक़का आलम भी कम न था॥

तेरे अलममें ज़मानेका दर्द पिन्हाँ है।
तुझे भुलाऊँ तो दुनियाको भूलना होगा॥

—निगार दिसम्बर १९५०

सहर होनेतक

लरज़ते सायोंसे मुबहम नक़ूश उभरते हैं।
इक अनसुनी-सी कहानी, इक अनसुनी-सी बात॥
तवील रातकी ख़ामोशियोंमें ढलते हैं।
फ़सुर्दा लमहे ख़लाओंमें रंग भरते हैं॥

सदायें ज़हनकी पिन्हाइयोंमें गूँजती हैं।
ख़िज़ाँके साये झलकते हैं, तेरी आँखोंमें॥
तेरी निगाहोंमें रफ़्ता बहारोंका ग़म है।
हयात ख़्वाबगाहोंमें पनाह ढूँढ़ती है॥

फ़सुर्दा लमहे ख़लाओंमें रंग भरते हैं।
यह गर्दिशे-महो-साल आज़मा चुकी है जिन्हें॥
यह गर्दिशे महो-साल आज़मा रही है हमें।
मगर यह सोच कि अंजामकार क्या होगा॥
दवाम तेरा मुक़द्दर है, और ना मेरा नसीब।
दवाम किसको मिला है, जो हमको मिल जाता?
यह चन्द लमहे अगर जाविदाँ न हो जाते।
मैं सोचता हूँ कि अपना निशान क्या होता?
कहाँ यह टूटता जब्रे-हयातका अफ़सूँ।
कहाँ पहुँचके ख़यालोंको आसरा मिलता?

—तहरीक अक्टूबर १९५४

अहले-महफ़िल अभी शाइस्त-ए-ऐय्याम नहीं।
आगही आम है, अन्दाज़े-जुनूँ आम नहीं॥
बज़्मे-मस्तीसे है यक गाम व-मंज़िल गहे-होश।
तेरे मस्तोंको मगर फ़ुर्सते-यक गाम नहीं॥
एक मुद्दत हुई हर रिश्तए-दिल टूट गया।
आज वह सिलसिलए नाम-ओ-पैग़ाम नहीं॥
मेरी नज़रोंमें है, सद् जल्वए-कौनैनके राज़।
इश्क़का ज़ौक़े-नज़र सिर्फ़ दरो-बाम नहीं॥

मैं भी हूँ शाहिदे-ऐय्यामके इशवोंका क़तील।
मेरे होंटोंपै मगर शिकवए-ऐय्याम नहीं ॥

—तहरीक नवम्बर १९५४

कितने अरमानोंसे चाहा है, तुम्हें,
दिले बेताबमें आकर देखो।
बज़्ममें ताबे-नज़र किसको है,
तुम सरे-बज़्म तो आकर देखो॥

—तहरीक मई १९५६

'माजिद' हसन फ़रीदी

यास कुछ इस तरहसे छाई है।
मौत भी हमपै मुसकराई है॥
आज वह ख़ुद हैं, माइले-दरमाँ।
दर्दे - हिजराँ तेरी दुहाई है॥
रात अश्कोंके साथ दामनपर।
मैंने तसवीर दिलकी पाई है॥
फिर वही वहशतें, वही रौनक़।
फ़िरसे शायद बहार आई है॥
अपने दामनकी धज्जियाँ करके।
मैंने गुलकी हँसी उड़ाई है॥
दिलकी वुसअ़तको पूछते हो क्या!
इसमें कोनैनकी समाई है॥

सद्क़ए - हुस्नका भिकारी हूँ।
दिल है या कास - ए - गदाई है॥
देखकर दिलको अपनी नजरें देख।
किसपै इल्ज़ामे - बे - वफ़ाई है।
शमअ़-गुल, वह भी चुप, उदास फ़िज़ा।
आज 'माजिद'ने मौत पाई है॥

—तहरीक नवम्बर १९५४

'माहिर' इक़बाल

नज़्म

चाहता हूँ कि मैं ग़ुरबतमें भी जाकर न सुनूँ।
कि मुसाफ़िरकी हज़ीं यादमें नाशाद है तू॥
ख़ुश हो अब टूट गया सिलसिलए-इश्क़ो-जुनूँ।
शाद हो कश-म-कशे-शौक़से आज़ाद है तू॥
होके मैं फ़र्ज़से मजबूर चला जाऊँगा।
तुझसे ऐ दोस्त! बहुत दूर चला जाऊँगा॥

—शाइर जुलाई १९४७

मुअल्लिस भटकली

तौबा-तौबा

मआले - बहारे - चमन तौबा - तौबा।
ख़िज़ाँ-दीदा सरु-ओ-समन तौबा-तौबा॥
ख़ुदाको तो दैरो - हरममें बिठाया।
ख़ुदा बन गये अहरमन तौबा-तौबा॥

यह तहज़ीबे-हाज़िरकी इशवा तराज़ी।
कि हैं मर्द भी रश्के-ज़न तौबा-तौबा ॥
वही सौमनातोंके मेमार हैं, अब।
जो कल तक थे, ख़ैबर-शिकन तौबा-तौबा ॥

—बीसवीं सदी अप्रैल १९५६

'मुज़तर' हैदरी

एहसासे-शिकस्त

मिज़ाजे-दिलकी नज़ाकत भी ख़ूब है, 'मुज़तर'!
कभी है शामे-अलम[1] और कभी निशाते-सहर[2] ॥
बदलते रहते हैं, अन्दाजेहाए-फ़िक्रो-नज़र।
उम्मीदो-बीमके[3] आलममें कर रहा हूँ सफ़र ॥

—निगार मई १९५७

कुछ देर बहलता रहता हूँ, कुछ देर मचलता रहता हूँ।
हर दौरमें अपने जीनेके अन्दाज़ बदलता रहता हूँ ॥
क्या जानिए कैसी आग है यह, शोलोंका[4] पता है, और न धुआँ।
महसूस मगर होता है यही, जैसे कि मैं जलता रहता हूँ ॥
मौजोंकी[5] रवानी, तेज़ हवा, मल्लाह भी ग़ाफ़िल और भँवर।
ऐसेमें सम्भलना मुश्किल है, लेकिन मैं सम्भलता रहता हूँ ॥
फ़ितरतमें[6] अज़ल[7] ही से मेरी नैरंगिओ[8]-नुदरत है 'मुज़तर'!
अफ़साना तो हूँ मैं एक, मगर उनवान[9] बदलता रहता है ॥

—निगार जुलाई १९५७

---

१. दुःखोंकी शाम, २. सुखोंकी सुबह, ३. आशा-निराशाके, ४. चिनगारियोंका, ५. लहरोंकी बढ़ौतरी, ६. स्वभावमें, संस्कारमें, ७. प्रारम्भसे, ८. रंगीन और अनोखापन, ९. शीर्षक।

'मुशफ़िक़' ख़्वाजा

हँसनेवाले तो हज़ारों थे मगर हमको मिला।
रौनक़े - अंजुमने - दीदाए-तर[1] एक ही शख़्स ॥
पुरशिशे-हालको[2] आते हैं, हज़ारों यूँ तो।
दिलकी बेताबीका बाइस[3] है मगर एक-ही शख़्स ॥
कितने चहरे थे कि था जिनसे तअल्लुक़ अपना।
फिर भी याद आया हमें ज़िन्दगी भर एक ही शख़्स ॥
हर हसीं शैको बड़े ग़ौरसे देखा हमने।
सामने आया ब-उनवाने-दिगर[4] एक ही शख़्स ॥
दरे-मैख़ानापै 'मुशफ़िक़' तो नहीं था शायद।
हमने देखा है, वहाँ ख़ाक-बसर[5] एक ही शख़्स ॥

—तहरीक जनवरी १९५७

'मूनिस' इटावी

कोई मश्क़े-जफ़ापर[6] अपनी नाज़ाँ[7]।
कोई दानिस्ता धोका खा रहा है॥
तेरे ग़ममें गुज़रना ज़िन्दगीका।
बहुत आसान होता जा रहा है॥

---

१. अश्रुपूर्ण आँखोंसे जलसेकी शोभा बढ़ानेवाला, २. तबियतकी हालत पूछने, ३. कारण, ४. बड़े-बड़े शीर्षकोंकी तरह, ५. ख़ाकपर लोटता हुआ, ६. अत्याचारोंके अभ्यासपर, ७. अभिमानी।

'मैकश' अकबराबादी

ब-अन्दाजे-नसीम[1] आये, ब-उनवाने-बहार[2] आये।
वोह अपने वाद-ए-फ़र्दाका[3] बनकर एतबार आये॥
चिराग़े-कुश्ता[4] लेकर हम तेरी महफ़िलमें क्या आये।
जो दिन थे ज़िन्दगीके वह तो रस्तेमें गुज़ार आये॥
ख़िज़ाँमें आये, बैठे ख़ाके-गुलपर, सोये काँटों पर।
सलाम अपना भी कह देना जो गुलशनमें बहार आये॥
यह जब्रो-इख़्तियारे-इश्क़ है तुम इसको क्या समझो।
रहेगा दिलपै कब क़ाबू जो तुम पर इख़्तियार आये॥
यह दुनिया मेरी हस्ती है, यह हस्ती मेरी दुनिया है।
अगर तुझको क़रार आये तो दुनियाको क़रार आये॥

यह माना ज़िन्दीमें ग़म बहुत हैं,
हँसे भी ज़िन्दगीमें हम बहुत हैं।
नहीं है, मुनहसिर कुछ फ़स्ले-गुलपर,
जुनूँके और भी मौसम बहुत हैं॥

हज़ार सुबहें शबे-इन्तज़ारमें देखीं।
कि जो चिराग़ जलाया वही बुझा डाला॥

'मैराज' लखनवी

वही उजड़ी हुई रातें, वही उजड़े हुए दिन।
और 'मैराज' की तक़दीरमें क्या रक्खा है॥

---

१. मृदु पवनकी तरह, २. बहारकी तरह, ३. भविष्यके वादेका, ४. बुझा दीपक (जर्जर शरीर)।

'राग़िब' मुरादाबादी

ख़ुशा वोह दिन जो तेरी आर्ज़ूमें ख़त्म हुआ।
ज़हे वोह शब जो तेरे इन्तज़ारमें गुज़री॥

उसी चमनमें हूँ 'राग़िब'! उमीदवारे-बहार।
ख़िज़ाँ जहाँसे लिबासे-बहारमें गुज़री॥

'राज़' चाँदपुरी

न सोज़ है तेरे दिलमें, न साज़ फ़ितरतमें।
यह ज़िन्दगी तो नहीं, ज़िन्दगी हक़ीक़तमें॥
जो बुलहविस थे, वोह गुमराह हो गये आख़िर।
अकेला रह गया, मैं मंज़िले-मुहब्बतमें॥

परवाने ख़ुदग़रज़ थे कि ख़ुद जलके मर गये।
एहसासे-सोज़े-शमए-शबिस्ताँ न कर सके॥

जानता हूँ बता नहीं सकता।
ज़िन्दगी किस तरह हुई बरबाद॥

—शाइर नवम्बर १९४३

वह शैख़े-वक़्त हो, कि बिरहमन, ख़ुदा गवाह।
रहबर बनाऊँगा न किसी कमनज़रको मैं॥

—शाइर सालनामा १९५१

'राज़' रामपुरी

नियाज़े-इश्क़में ख़ामी कोई मालूम होती है।
तुम्हारी बरहमी क्यों बरहमी मालूम होती है?

दिल चुरानेकी अबस उनसे शिकायत कर दी।
अब वोह आँखें भी चुराते हैं पशेमाँ होकर ॥

अपनी हस्तीसे दुश्मनी थी मुझे।
याद हैं उनसे दोस्तीके दिन ॥

वोह सामने सरे-मंज़िल चिराग़ जलते हैं।
जवाब पाँव न देते तो मैं कहाँ होता ?

महसूस हो रहा है कि गुम हो रहा हूँ मैं।
किस सिम्त आ गया, तुझे मैं ढूँढ़ता हुआ ?

हर-इक शयसे जवानी उबल पड़ी आख़िर।
मेरी नज़रसे कहाँ तक कोई हिजाब करे ॥

ज़िन्दा रहना न सिखाओ लेकिन—
जान देना तो बता दो हमको ॥

सब्र और मैं, ख़ैर इसका ज़िक्र क्या ?
जा रहे हैं आप, अच्छा जाइए ॥

इन आँसुओंकी हक़ीक़तको कौन समझेगा।
कि जिनमें मौत नहीं, ज़िन्दगीका मातम है ॥

उसकी हसरत ? अरे मुआज़ल्ला।
जिसका चाहा हुआ, कभी न हुआ ॥

फ़ुर्सते-अर्ज़े - मुहब्बत न मिली, ख़ूब हुआ।
आप सुनते भी तो, क्या आपसे कहता कोई ॥

—निगार अक्टूबर १९४५

'राज़' यज़दानी

सज़ाको झेलनेवाले यह सोचना है गुनाह ।
कोई क़सूर भी तुझसे कभी हुआ कि नहीं ॥
वफ़ा तो ख़ैर बड़ी चीज़ है, मैं सोचता हूँ कि वोह ।
जफ़ाकी भी कभी ज़हमत उठायेगा कि नहीं ॥

निसारे-जलवा दिलो-दीं ज़रा नक़ाब उठा ।
वह एक लमहा सही, एक लमहा क्या कम है ॥

अगर सकून वही दो जहाँको देता है ।
तो कुछ समझके बनाया है बेक़रार मुझे ॥
अजब करम है कि बे-इख़्तियारियाँ देकर ।
अ़ता किया है दो आलमपै इख़्तियार मुझे ॥

'राही' रामसरनलाल

कुछ ठंडी साँसें होती हैं, अश्कोंमें रवानी होती है ।
पूछे तो कोई मेरे दिलसे क्या चीज़ जवानी होती है ?

दुनियाके चलनको क्या कहिए, जो चीज़ है फ़ानी होती है ।
बरसों जो हक़ीक़त रहती है, इक रोज़ कहानी होती है ॥
इक ठेस लगी, काँटा-सा चुभा, कुछ दर्द हुआ, आँसू टपके ।
बरबाद मुहब्बतकी अक्सर ऐसी ही कहानी होती है ॥

—आजकल मार्च १९५३

'रोशन' देहलवी

ʘ तुम्हारे हुस्नकी महफ़िलमें आये इसतरह आशिक़ ।
कुछ आये इनवीटेशनसे, कुछ आये एजीटेशनसे ।
वोह होंगे और जिनको वस्ल इस मौसममें हासिल है ।
यहाँ तो शग़ल सरदीमें रहा करता है लिपटनसे ॥

'रौनक़' दकनी

ग़मे-हयातको दुनियापै आशकार न कर ।
यह एक राज़ है, ज़िक्र इसका बार-बार न कर ॥
मुहब्बत और जफ़ाओंका ज़िक्र क्या माने ?
कभी शुमार सितमहाए- बेशुमार न कर ॥
अमलकी राहमें होती हैं मुश्किलें पैदा ।
किसीको अपने इरादेका राज़दार न कर ॥

'लतीफ़' अनवर गुरुदासपुरी

मैं जानता हूँ तेरे ग़मकी मसलहत लेकिन ।
कभी-कभीकी मसर्रत भी साज़गार नहीं ॥

दिल मुज़तरिब, निगाह परीशाँ, फ़िज़ा उदास ।
गोया तेरा ख़याल क़यामतसे कम नहीं ॥

हाय क्या शै है, वफ़ाका ज़ौक़ अहदे-इश्क़में ।
ख़ुद समझता हूँ, मगर समझा नहीं सकता हूँ मैं ॥

अब हमें कोई पूछता ही नहीं ।
जैसे हम साहवे-वफ़ा ही नहीं ॥

हर नाला रफ़्ता-रफ़्ता दुआतक पहुँच गया।
बन्देसे वास्ता था, ख़ुदा तक पहुँच गया॥

न कोई जादा, न कोई मंज़िल, न कोई रहबर, न कोई रहज़न।
क़दम-क़दमपर हज़ार ख़दशे न जाने क्या है, न जाने क्या हो॥

फ़ितरतका इशारा है, यहाँ गिरयए-शबनम।
हँसते हुए फूलोंको ख़िज़ाँ याद नहीं है॥

शायद ग़मे-हयात ही था मक़सदे-हयात।
क्यों वरना इम्बसातसे महरूम कर दिया॥

ज़मानेका शिकवा न कर रोनेवाले।
ज़माना नहीं साथ देता किसीका॥

तुझे कबसे पुकारता हूँ मैं।
क्या तुझे फ़ुर्सते-जवाब नहीं?

ज़िक्रे-बहार, फ़िक्रे-ख़िज़ाँ, रंजे-बेकसी।
तरतीबे-आशियाँका तक़ाज़ा नज़रमें है॥

कई पर्दे उठाये जा चुके हैं रूए-हस्तीसे।
मगर हर-एक पर्दा, एक पर्देका तक़ाज़ा है॥

इज़्तराबे-ग़म सिखाता जायगा।
रफ़्ता-रफ़्ता दिलको आदाबे-हयात॥

—शाइर जनवरी १९४६

'लुत्फ़ी' रिज़वाई

कभी ख़याल, कभी बनके बर्क़-तूर आये।
जब उनको याद किया सामने ज़रूर आये॥

यह क्या कि सुबहको नाले हैं शामको आहें।
कभी तो सब्र तुझे क़ल्बे-नासबूर आये॥
निगाहे-शौक़ न होनी थी, मुतमइन न हुई।
अगर्चे राहे-तलबमें हज़ार तूर आये॥
अजीब हाल है कुछ तुमपै, मिटनेवालोंका।
कि जितना सोज़ बढ़े उतना मुँहपै नूर आये॥
नज़र किसीकी नदामतसे क्या झुकी 'लुत्फ़ी'।
कि याद मुझको ख़ुद अपने ही सब क़सूर आये॥

—निगार सितम्बर १९४७

'वफ़ा' बराही

यूँ तड़प इश्क़में दिले-मुज़्तर!
सारी दुनिया तड़पके रह जाये॥

जान देनेका जब इरादा किया।
तुम मेरे सामने चले आये॥

निडर बादाकश हैं कुछ ऐसे कि जैसे—
गुनाहोंको यह बख़्शवाये हुए हैं॥

'शफ़क़' टोंकी

ख़िज़ाँ अब आयगी तो आयेगी ढलकर बहारोंमें।
कुछ इस अन्दाज़से नज़्मे-गुलिस्ताँ कर रहा हूँ मैं॥

बड़ी मुश्किलसे आता है मयस्सर ज़िन्दगी भरमें।
वोह इक लमहा जिसे इन्साँ गुज़ारे शादमाँ होकर॥
इन्हीं ज़र्रोंसे कल होंगे नये कुछ कारवाँ पैदा।
जो ज़र्रे आज उड़ते हैं, ग़ुबारे-कारवाँ होकर॥

थीं जो कलतक कश्ति-ए-उम्मीदको थामे हुए॥
रुख़ बदल कर आज वोह मौजें भी तूफ़ाँ हो गईं।

अब इस फ़िक्रमें रात-दिन कट रहे हैं।
तुझे भूल जायें कि ख़ुदको भुला दें॥

—शाइर अक्तूबर १९४६

'शबनम' इकराम

० दस्ते - साक़ीसे जाम लेता हूँ।
अक़्लसे इन्तक़ाम लेता हूँ॥
दौड़ पड़ते हैं, सारे दीवाने।
जब बहारोंका नाम लेता हूँ॥
तेरी आँखोंके इक इशारेसे।
जाने कितने पयाम लेता हूँ॥
यह भी इक मस्लहत है ऐ 'शबनम'!
सादगीसे जो काम लेता हूँ॥

'शमीम' जयपुरी

अव्वल तो यह कि नींद न आये तमाम रात।
फिर उसपर उनकी याद सताये तमाम रात॥

साक़ी-ओ-मुतरिब आये, जाम आये, सुबू आये ।
आना था जिनको वोही न आये तमाम रात ॥
ऐसे कहाँ नसीब शबे - माहताबमें ।
वोह आयें और आके न जायें तमाम रात ॥
वोह क्या गये कि नींद भी आँखोंसे ले गये ।
यानी वह ख़्वाबमें भी न आये तमाम रात ॥
ऐसे वोह बे ख़बर तो न थे मुझसे बज़्ममें ।
बैठे रहे निगाह झुकाये तमाम रात ॥

'शमीम' क़ैसर

टूटे सपने

एक तुम्हें पानेकी ख़ातिर नींद गँवाई, चैन गँवाया ।
तुमको अपने दिलमें बसाकर जीको कैसा रोग लगाया ?
आँसूके कुछ मोती चुनकर सपनोंकी मालाएँ गूँथी ।
प्रेमकी उन मालाओंको भी हँस-हँसकर तुमने ठुकराया ॥
प्यार भरी मुसकानकी भिक्षा माँग रहा था कबसे जोगी ।
तुमने इस जोगीको अपने द्वारसे ख़ाली हाथ फिराया ॥
तुमने सजाई थी फुलवारी रंग-बिरंगे फूल थे जिसमें ।
उन फूलोंका रूप दिखाकर मुझको काँटोंमें उलझाया ॥
आज मेरे जीवनके पथपर छाया है घनघोर अँधियारा ।
मेरा सब कुछ लूटनेवाले, तुमने मुझे किस राह लगाया ?
जाने कब तक जीवन-पथपर यूँही भटकता रहना होगा ।
इतनी लम्बी राहमें अबतक कोई अपने साथ न आया ॥

—शमअ फरवरी १९५८

'शहाब'

न मिला हमें कुछ गदा होकर ।
न दिया तूने कुछ ख़ुदा होकर ॥
ऐ बुतो आज़माके देख लिया ।
न हुए तुम ख़ुदा, ख़ुदा होकर ॥

'शहीद' बदायूनी

इतना ज़रूर है कि सकूँ तो न मिल सका ।
लेकिन तेरे बग़ैर भी रातें गुज़र गईं ॥

वोह सम्भले हुए थे, मगर थे फ़सुर्दा ।
न आया उन्हें मुझसे दामन बचाना ॥

एहसास तो ज़रूर था लेकिन बहारमें ।
हम एहतियाते-जेबो-गरेबाँ न कर सके ॥

सुनके कल महफ़िलमें ज़िक्रे-हुस्ने-दोस्त ।
हम भी कुछ आँसू बहाकर रह गये ॥

जलते तो थे चिराग़ मगर रोशनी न थी ।
तुम आ गये तो रौनक़े-काशाना हो गई ॥

हँसी आ गई उनकी बेगानगी पर ।
वोह गुज़रे बराबरसे दामन बचाये ॥

हालात इजाज़त नहीं देते कि समझ लूँ ।
अब ज़हर मेरे ग़मकी दवा है कि नहीं है ॥

कर लिया हुस्नकी दुनियासे किनारा मैंने ।
यूँ भी इक दौर मुहब्बतमें गुज़ारा मैंने ॥

वोह किसीके हैं, मैं किसीका हूँ, मगर एक रब्त है आज तक ।
वही एहतियाते-निगाह है, वही एहतियाते-कलाम है ॥

किसने लिक्खा है यह दीवारोंपै ज़िन्दाँकी 'शहीद' !
"जान देना जिसने सीखा, उसको जीना आ गया" ॥

जिनकी बेबाक़ीके चर्चे हो रहे हैं बज़्ममें ।
मैंने देखी है उन आँखोंमें हया आई हुई ॥

—निगार अप्रैल १९४६

शान्तिस्वरूप भटनागर

○ मैं जागता हूँ कि शायद कहींसे आ जाओ ।
यहींसे खोई गई थीं, यहींसे आ जाओ ॥
निगाहें ढूँढ़ती - फिरती हैं, गोशे - गोशेमें ।
नहीं ज़मींपै तो अर्शे-बरींसे आ जाओ ॥
सुपुर्दे-ख़ाक अगर हो गई तो क्या परवा ?
ब-शक्ले लाला-ओ-गुल तुम ज़मींसे आ जाओ ॥
सितम है मुझको पता तक नहीं, गई हो कहाँ ?
ग़रज़ जहाँ भी हो, लिल्लाह वहींसे आ जाओ ॥
पसन्द हो न अगर शाहे-राहे-आम तुम्हें ।
तसव्वुरातमें राहे - यक़ींसे आ जाओ ॥

—आजकल १ जून १९४६

'शातिर' हकीमी

जो नज़रकी इल्तजा समझा नहीं।
हाथ उसके सामने फैलायें क्या ॥
ज़िन्दगी क्या है मुसलसल इज़्तराब।
इज़्तराबे-दिलसे फिर घबरायें क्या ॥

बैठना दुश्वार है आरामसे।
आस्ताने-यारसे उठ जायें क्या ॥

—निगार अप्रैल १९४९

'शाद' आरफ़ी

क़फ़स अपना लिया मैंने, चमन ठुकरा दिया मैंने।
तुम्हीं सोचो तुम्हीं समझो कि ऐसा क्यों किया मैंने ॥
इधर वह महवे-आराइश, इधर मैं महवे-नज़्ज़ारा।
न रक्खा आईना उसने न छोड़ा देखना मैंने ॥
न जाने कौन रहज़नका क़दम हो कौन रहबरका।
मिटा डाला रहे-मंज़िलका इक-इक नक़्शे-पा मैंने ॥

—तहरीक सितम्बर १९५६

'शाद' तमकनत

न जाने क्यों तबीयत हो गई अपनोंसे बेगाना।
तेरे ग़मकी बदौलत बेनियाज़ी बढ़ गई अपनी ॥

आँख और हँसती रहे वक़्ते-विदाए-दोस्तपर ।
इस वफ़ूरे-ज़ब्ते-कामिलको कहाँ तक रोइए ॥
आँख—जैसे कोई जीनेकी क़सम देता हो ।
गुफ़्तगू—जैसे सँवारे कोई क़िस्मत मेरी ॥

—निगार दिसम्बर १९५४

'शादां' नसीरुद्दीन

ग़रूरे-हुस्न न था, शमअ़ बेनियाज़ न थी ।
वोह ना-शनासे अदब थे, जले जो परवाने ॥

'शारक़' मेरठी

दैरो-हरममें जाकर हमने क्या-क्या सर टकराया है ।
काश, किसी दिन पाँवपै तेरे सरको अपने झुका लेते ॥
अपने बसकी बात नहीं थी, वर्ना हम भी ऐ 'शारक़' ।
चुपके-चुपके अश्क बहाकर दिलकी आग बुझा लेते ॥

—निगार मई १९५७

किसी तरह ख़लिशे-आर्ज़ू[१] मिटा न सके ।
तेरे क़रीब भी आकर सकून[२] पा न सके ॥
चमनमें देखे कोई उस कलीकी महरूमी[३] ।
जो मुसकराये तो जी भरके मुसकरा न सके ॥
न पूछ उसके मुक़द्दरकी ना-रसाईको[४] ।
जो आप गुम हो मगर फिर भी तुझको पा न सके ॥

---

१. अभिलाषाकी फाँस, २. चैन, ३. रीतापन, ४. पहुँचके बाहरकी स्थति को ।

यह राज़ वह है जो होंटों तक आ नहीं सकता।
कहाँ झुकाई जबीं और कहाँ झुका न सके॥
किसीके ग़मका रहा पास इस क़दर 'शारक़'!
कि भूल कर भी मुहब्बतमें मुसकरा न सके॥

—निगार सितम्बर १९५४

खाते रहे फ़रेब सँभलते रहे क़दम।
चलते रहे जुनूँ का सहारा लिये हुए॥

कीं नहीं बल्कि हो गईं 'शारक़'!
हैं कुछ ऐसी भी अपनी तक़सीरें॥

'शिफ़ा' ग्वालियरी

रवा रक्खा यहाँ तक एहतरामे-आशिक़ी मैंने।
हँसी आई कभी तो आँसुओंको सौंप दी मैंने॥

मिली ऐसी भी राहें मुझको अक्सर राहे-उल्फ़तमें।
कि ख़ुदको ऐ 'शिफ़ा'! घबराके ख़ुद आवाज़ दी मैंने॥

सबक़ ले मंज़िरे-गोरे-ग़रीबाँ देखनेवाले!
चराग़ोंको तरसते हैं, चराग़ाँ देखनेवाले॥
क़फ़समें भी तुझे रहना कहीं दूभर न हो जाये।
अरे मुड़-मुड़के ओ सूए-गुलिस्ताँ देखनेवाले॥

तू जिसे ज़र्रा समझकर कर रहा है पायमाल।
देख उस ज़र्रेके सीनेमें कहीं दुनिया न हो॥

शबे-ग़म रोनेवाला रोते-रोते सो गया शायद।
जबींने-गुलपै शबनमकी, नमीं देखी नहीं जाती॥
अरे ओ बेकसीपै रोनेवाले! कुछ ख़बर भी है।
वही है ज़िन्दगी जो ज़िन्दगी देखी नहीं जाती॥

इक नई बुनियाद डालेंगे तजस्सुसकी 'शिफ़ा'।
हर ग़ुबारे-कारवाँमें कारवाँ ढूँढ़ेंगे हम॥

न होगा पास रहकर इन्तहाँ मश्क़े-तसव्वुरका।
वोह जितना दूर हो सकता है, उतना दूर हो जाये॥

लबोंपै दम है किसीका, कोई सरे-बालीं।
'शिफ़ा'! हयातका दामन पकड़के आई है॥

धड़कते दिलसे 'शिफ़ा' तक रहा हूँ यूँ तारे।
किसीने जैसे कहा हो कि "आ रहा हूँ मैं"॥

शऊरे-ग़मकी आशुफ़्तासरी तक बात क्यों पहुँचे?
ख़िरदकी राहसे दीवानगी तक बात क्यों पहुँचे?
अगर दामन बचे, रहबरकी उलझनसे तो अच्छा है।
ख़राबे-जुस्तजूकी गुमरही तक बात क्यों पहुँचे?

मुहब्बतकी कहानी हो, कि नफ़रतकी हिकायत हो।
किसीकी भी सही लेकिन किसी तक बात क्यों पहुँचे ?
निखरना है तो निखरे अपने ही आईनेमें फ़ितरत !
किसी रुख़से निगाहे-आदमी तक बात क्यों पहुँचे ?
मुहब्बत ख़ुद ही हल करले मुहब्बतके मुअम्मोंको।
उलझनेको ख़ुदी-ओ-बेख़ुदी तक बात क्यों पहुँचे ?

—आजकल जनवरी १६५४

'शेरी' भोपाली

न जीनेपर ही क़ाबू है न मरनेका ही इमकाँ है।
हक़ीक़तमें इन्हीं मजबूरियोंका नाम इन्साँ है॥

ग़ज़ब है जुस्तजू-ए-दिलका यह अंजाम हो जाये।
कि मंज़िल दूर हो और रास्तेमें शाम हो जाये॥
अभी तो दिलमें हल्की-सी ख़लिश मालूम होती है।
बहुत मुमकिन है कल इसका मुहब्बत नाम हो जाये॥

ख़ताके बाद इनआमे-ख़ताका उनसे तालिब हूँ।
किसीने आजतक ऐसी भी गुस्ताख़ी न की होगी॥

१. भेद, २. मस्तक।

'शैदा' खुरजवी

जिस दौरसे फ़रिश्ते दामनकशा थे या रब !
उस दौरसे गुज़रकर आया हूँ ज़िन्दगीमें ॥
ऐ दोस्त ! रफ़्ता-रफ़्ता तुझको भी ढूँढ़ लूँगा ।
खोया हूँ मैं अभी तो अपनी ही आगही में ॥
किस दर्जा शादमाँ हूँ, अपनी तबाहियों पर ।
कितना अज़ीज़ तर है मिटना भी आशिक़ीमें ॥
जो ख़िज़्रसे न उट्ठे, उम्रे दराज़ - पाकर ।
वोह ग़म उठाये हमने, दो दिनकी ज़िन्दगीमें ॥
क्या पूछता है 'शैदा' ! मुझसे मेरी तबाही ।
अन्धेर है लुटा हूँ, जलवोंकी रोशनीमें ॥

'शौकत' परदेसी

मुद्दत हुई न जाने मुझे किस ख़यालमें ।
आई थी इक हँसी बड़ी संजीदगीके साथ ॥
'शौकत' ! इस हयातके[1] लमहोंमें[2] बारहा[3] ।
हँसना पड़ा है मुझको भी सबकी हँसीके साथ ॥

—निगार मार्च १९५७

'सबा' अकबराबादी

पै - हम असीर मरहल-ए-जिस्मो - जाँ रहे ।
किन सख़्त बन्दिशोंमें तेरे नातवाँ रहे ॥
आँखोंसे बहके जो शबे-ग़म ज़ू-फ़िशाँ रहे ।
वह तो चिराग़ हो गये आँसू कहाँ रहे ? ॥

---

१. जीवनके, २. क्षणोंमें, ३. बार-बार ।

ऐ हुस्ने-यार ! शर्म कि वे सोज़-सा है दिल।
उस घरमें रोशनी भी न हो तू जहाँ रहे ॥
मसरूर हम नहीं तो 'सबा' इख़्तियार क्या ?।
नाशादमाँ रखे गये नाशादमाँ रहे ॥

तबस्सुमको मेरे, मेरा ग़म न समझे।
वोह भोले थे अन्दाज़े-मातम न समझे ॥
ग़लत - फ़हमियोंमें जवानी गुज़ारी।
कभी वोह न समझे, कभी हम न समझे ॥
हमेशा रहे मुतमइन उस अ़तापर।
ज़ियादा न माँगा, कभी कम न समझे ॥

महबूबे-माहेवशको गलेसे लगाके पी।
थोड़ी-सी पीके उसको पिला, फिर पिलाके पी ॥
पाबन्द रोज़े-अब्र शबे-माहका न हो।
पिलवायें जब हसीन, तक़ाज़े हवाके पी ॥

दुनियाए-बद नज़रकी नज़रसे बचाके पी।
यानी तअ़य्युनातके पर्दे गिराके पी ॥
बेकैफ़की शराबका कोई मज़ा नहीं।
इसमें ज़रा-सा ख़ूने-तमन्ना मिलाके पी ॥

तेरी महफ़िलमें मेरा बैठना बेलुत्फ़ था लेकिन—
ज़रा यह भी तो सुन लूँ मेरे उठ जानेपै क्या गुज़री ?
यह दीवारोंके छींटे ख़ूँके यह ज़ंजीरके टुकड़े।
फ़िज़ा ज़िन्दाँकी शाहिद है कि दीवानेपै क्या गुज़री ?

यह अफ़साना बरहमनकी निगाहे-याससे सुनिए।
कि पूजा छोड़ दी मैंने तो बुतख़ानेपै क्या गुज़री ॥

'सरशार' जैमिनी

बेकार, शोर, नालाओ आहो-फ़ुग़ाँसे क्या।
चौंका भी कोई मौतके ख़्वाबे-गराँसे क्या ॥
इस डरसे हम न आपकी महफ़िलमें-आ सके।
क्या पूछें आप निकले हमारी ज़बाँ से क्या ॥
बे-साख़्ता चमन-का - चमन मुसकरा उठा।
जाने कहा बहारने आकर ख़िज़ाँ से क्या ॥
कुछ फ़र्क़ इम्तयाज़े-गुलो-ख़ारमें[1] नहीं।
इन्साफ़ उठ गया है, यहाँ तक जहाँसे क्या ॥
इसको 'वही'[2] समझके जहाँने किया क़बूल।
जाने निकल गया था हमारी ज़बाँसे क्या ॥

—आजकल नवम्बर १९५४

'सरशार' भीमसेन

सितम ज़ाहिर, जफ़ा साबित, मुसल्लिम बेवफ़ा तुम हो।
किसीको फिर भी प्यार आये तो क्या समझें कि क्या तुम हो ॥
चमनमें इख़्तलाते - रंग - ओ - बू से बात बनती है।
हमीं हम हैं, तो क्या, हम हैं, तुम्हीं तुम हो तो क्या तुम हो ॥

---

१. फूल और काँटेकी उपयोगितामें कोई अन्तर नहीं समझा जा रहा है, २. ईश्वरीय-सन्देश।

क़फ़ससे सुए-आशियाँ देखता हूँ।
कहाँ हूँ इलाही कहाँ देखता हूँ॥

—आजकल १५ अक्टूबर १९४५

'साक़िब' कानपुरी

मैं था जहाने-इश्क़में तेरे वजूदका गवाह।
कुछ न खुला यह राज़, क्यों तूने मुझे मिटा दिया॥

तुझपै भी कुछ असर हुआ, उसकी हयाते-इश्क़का।
हाय वोह ग़म-नसीब जो दर्दपै मुसकरा दिया॥

कौन समझेगा इस लताफ़तको।
तेरे इन्कारमें भी है इक़रार॥
दर्दमें उसके ज़िन्दगी तो है।
हो मुबारक यह इश्क़का इज़हार॥
तेरी सूरत तो है सरापा रहम।
हुस्न तेरा हैक्यों ग़रीब-आज़ार॥

'साग़र' बलवन्तकुमार

ज़मानेकी, न फ़लककी जफ़ासे डरता हूँ।
मगर ग़रीबकी इक बद्दुआसे डरता हूँ॥
ख़ुदाकी शान वोह डरता नहीं ख़ुदासे भी।
मगर मैं उस बुते-काफ़िर अदासे डरता हूँ॥
ख़तर नहीं कोई बेगानोंकी जफ़ासे मुझे।
मगर यगानोंकी महरो-वफ़ासे डरता हूँ॥

—आजकल मार्च १९५२

'साबिर'

उनसे भी कर लिया है कनारा कभी-कभी।
यह ज़हर भी किया है गवारा कभी-कभी॥
आया हूँ ज़िन्दगीके तक़ाज़ोंको टाल कर।
पाकर तेरी नज़रका इशारा कभी-कभी॥
गो दर्दे-दिल हरीफ़े-ग़मे[1]-ज़िन्दगी न था।
फिर भी लिया है उसका सहारा कभी-कभी॥
हंगामे-ऐश बारहा आँसू निकल पड़े।
हँस-हँसके दौरे-ग़म भी गुज़ारा कभी-कभी॥
जैसे किसीने मुझको पुकारा हो दूरसे।
आया है यूँ ख़याल तुम्हारा कभी-कभी॥
तूफ़ाँमें ले गया हूँ सफ़ीनेको[2] मोड़कर।
आया है सामने जो कनारा कभी-कभी॥
'साबिर' न थी नज़रको ही जल्वोंकी आर्ज़ू।
जल्वोंने भी नज़रको पुकारा कभी-कभी॥

—तहरीक दिसम्बर १९५४

'साहिर. सोहनलाल

सितारे दम-ब-ख़ुद[3] हैं रात चुप है।
वह कुछ धीमे सुरोंमें गा रहे हैं॥
इसीका नाम हो शायद मुहब्बत।
ख़ता उनकी है, हम शर्मा रहे हैं॥

---

१. जीवन-दुखोंका प्रतिस्पर्द्धी, २. नावको, ३. निस्तब्ध।

कहीं तारे-नज़र उलझा हुआ है।
नक़ाब उठती नहीं शर्मा रहे हैं॥
भरी बरसातकी उफ़री जवानी।
घटाओंको पसीने आ रहे हैं॥
यह मौसम और इस मौसममें तौबा।
जनाबे शैख़ क्या फर्मा रहे हैं॥
अजलको[1] रोकना आवाज़ देना।
ज़रा हम मैकदे[2] तक जा रहे हैं॥
किसीकी यादसे दिन-रात 'साहिर'।
दिले - बर्बादको बहला रहे हैं॥

—आजकल मई १९५४

'साहिर' भोपाली

मैं नादाँ नहीं हूँ कि घबराके ग़मसे।
तेरे पास आकर तुझे दूर कर दूँ॥

मैं उस दम जोशमें अपना गरीबाँ चाक करता हूँ।
कि जब हाथोंमें आकर उनका दामन छूट जाता है॥
निगाहे-मस्ते साक़ीका यह इक अदना करिश्मा है।
नज़र मिलते ही बस हाथोंसे साग़र छूट जाता है॥
लरज़ जाते हैं, उस दम यह, ज़मीनो-आस्माँ 'साहिर'।
किसी बेकसके दिलका आसरा जब छूट जाता है॥

---

१. मृत्युको, २. मदिरालय तक।

वोह मेरे सब्रका कब तक मुक़ाबिला करते।
करम[1] वोह मुझपै न करते तो और क्या करते॥
बयाने - साहिरे - बर्बाद पहिले सुन लेते।
फिर आप चाहते जो कुछ भी फ़ैसला करते॥

बड़ी मुश्किलसे दिले-ज़ार[2] अभी बहला था।
हाय किस वक़्त वफ़ाएँ तेरी याद आई हैं॥

पनाह माँगते हैं, वहशियोंसे वीराने।
तू ही बता कि कहाँ जायें तेरे दीवाने॥
भला यह कैफ़[3] कहाँ है, सरूरे-सहबामें[4]।
तेरी निगाह पै सदक़े[5] हज़ार मैख़ाने[6]॥

दुनिया वालोंकी हिक़ारतकी[7] नहीं परवा मुझे।
तुम न नज़ारोंसे कहीं अपनी गिरा देना मुझे॥
देखते ही देखते 'साहिर' वोह मेरे हो गये।
देखती-की-देखती ही रह गई दुनिया मुझे॥

वफ़ूरे-दर्दमें[8] भी मुसकरा देता हूँ पुरसिशपर[9]।
किया है, क़िस्सए-ग़मको अब इतना मुख़्तसिर मैंने॥

—निगार मई १६५४

न आया जब पज़ीराईको[10] कोई दश्ते-वहशतमें।
तो अपने नक़्शे-पा पर आप सजदा कर लिया मैंने॥

---

१. दया, २. दुःखी दिल, ३. आनन्द, मात, ४. शराबके नशेमें, ५. न्योछावर, ६. मदिरालय, ७. घृणाकी, ८. दर्दकी अधिकतामें, ९. हाल पूछनेपर, १०. स्वागतको, मात पूछनेवाला।

क़यामत-ख़ेज़ अगर तूफ़ाने-ग़म उट्ठा तो क्या परवा ।
कि अब तो डूबकर पैदा किनारा कर लिया मैंने ॥
यही क्या कम सज़ा है, बेकसी-ए-इश्क़की 'साहिर' !
कि उनसे छुटके भी जीना गवारा कर लिया मैंने ॥

नज़रसे पुरसिशे-ग़म[1] बार-बार क्या कहना ।
यह पासे - ख़ातिरे - उम्मीदवार क्या कहना ॥

मरना ही पड़ा मुझको जीनेके लिए 'साहिर' !
इल्ज़ामे - करम आते जब हुस्नके सर देखा ॥

अपने - ही सर लिया इल्ज़ामे-तबाही मैंने ।
मुझसे देखा न गया उनका पशेमाँ होना ॥

ज़माना कुछ भी कहले; कुछ भी समझे, कुछ नहीं परवा ।
मगर वह तो अभी तक मुझको दीवाना नहीं कहते ॥

ताबे-नज़ारा जब नहीं, फिर बज़्मे-नाज़में ।
किस मुँहसे लेके दीदका अर्मान जाइए ॥
दिल तोड़कर न जाइए 'साहिर'का इस तरह ।
बर्बादे - आर्ज़ूका कहा मान जाइए ॥

—निगार मार्च १९५७

सिराज' लखनवी

मेरी मुस्तक़िल शबे-तारको कभी दिन बनाके भी देख ले ।
कभी बर्क़ बनके चमक भी जा, कभी मुसकराके भी देख ले ॥

---

१. दुःखोंकी पूछ-ताछ ।

यह है इश्तयाक़की इन्तहा कि बना हुआ हूँ ख़ुद आईना।
कभी मेरी हसरते-दीदको सरे-बाम आके भी देख ले ॥
किसी रोज़ जान भी डालकर इसे ज़िन्दगीए-दवाम दे।
तेरी याद दर्द तो बन चुकी इसे दिल बनाके भी देख ले।
तेरे इक इशारेपै कितने दिल मिले ख़ाको-ख़ूंमें ख़ुशी-ख़ुशी।
मैं निसार नीची निगाहके यह नज़र उठाके भी देख ले ॥
मेरे जायचेमें हयातके कहीं कोई घर भी ख़ुशीका है।
मैं निसार तेरे अताबके कभी मुसकराके भी देख ले ॥
मेरा दिल भी शमए-ख़ामोश है, इसे बख़्श ताबिशे-ज़िन्दगी।
कभी अपनी ख़िल्वते-नाज़में यह दिया जलाके भी देख ले ॥
मैं 'सिराज' अश्क नसीब हूँ यही एक मेरा इलाज है।
तेरे जीमें आये तो बेवफ़ा कभी मुसकराके भी देख ले ॥

—तहरीक सितम्बर १९५४

यह माना दिल तो यह चाहता है, बहार देखें ख़िज़ाँसे पहले।
मगर कहा मानों हम-सफ़ीरो, क़फ़स बने आशियाँ से पहले ॥
सनमकदा जन्नते-नज़र है, हरमका जल्वा लतीफ़तर है।
यह सच है लेकिन यह सर उठे तो कहीं तेरे आस्ताँ से पहले ॥
मैं लाख लब बन्दे-मुद्दआ हूँ, ख़ुदा करे उनका सामना हो।
जो दिलपै आलम गुज़र रहा है, नज़र कहेगी ज़बाँसे पहले ॥
न तूरो-मूसाका था तरन्नुम, न शोर दारो-रसन उठा था।
यह एक लय भी नहीं छिड़ी थी शिकस्ता दिलकी फ़ुग़ाँ से पहले ॥
हुज़ूर दामन तो अपना देखें अजब नहीं 'छींट हो' कहींपर।
लहूकी एक बूँद भी तड़पकर गिरी थी अश्के-रवाँ से पहले ॥

ठहर ज़रा ऐ ग़मे - मुहब्बत, तेरा तो हर रंग मुस्तक़िल है।
चुका लूँ यह आये दिनका क़िस्सा ज़रा ग़मे-दो जहाँसे पहले ॥
'सिराज' इस दिलको फूल बनना भरे चमनमें न रास आया।
नज़र लगी ख़ुश्क हो गया ख़ुद बहार बनकर ख़िज़ाँसे पहले ॥

—तहरीक अक्टूबर १९५४

मैं कबका रौमें इन अश्कोंकी अबतक बह गया होता।
इन आँखोंपर तरस खाकर यह किसने आस्तीं रख दी ?

न आया आह आँसू पूँछना भी ग़मके मारोंको।
निचोड़ी भी नहीं दामनपै यूँ ही आस्तीं रख दी ॥

यहीं उठकर चला आये अगर काबेका जी चाहे।
कि अब तो नक़्शे-पाए-यार पर हमने जबीं रख दी ॥

—शाइर सालाना नवम्बर १९५१

'सिद्दक़' जायसी

हज़ार सईकी गुंचोंने दिल लुभानेकी।
उड़ा सके न अदा तेरे मुसकरानेकी ॥
वह हँसते आये लगावट तो देख आनेकी।
मिसाल बन गई रौनक़ ग़रीबख़ानेकी ॥
कली-कलीको है हसरत कि फूल बन जाये।
ख़बर है गर्म गुलसिताँमें किसीके आनेकी ॥
सुना है 'सिद्क़' हुआ सूए-करबला राही।
तमाम उम्रमें इक बातकी ठिकानेकी ॥

दहन तक[1] जज़्बए - तौसीफ़[2] होंटों तक सलाम आया।
ज़बाने-हम-नफ़स पर हाय किस काफ़िरका नाम आया॥
असीरी[3] थी मुक़द्दर बस असीरीका पयाम[4] आया।
किसीने ज़ुल्फ़ बिखराई न कोई लेके दाम[5] आया॥
ढले थे हुस्नके साँचेमें रोज़े-वस्लके लमहे।
न वैसी सुबह फिर आई न वैसा लुत्फ़े-शाम आया॥
तबस्सुम[6] खेलता है फिर लबो-रुख़सार[7] पर उनके।
कोई दिल 'सिद्क़' शायद कूए-नाकामीमें[8] काम आया॥

—तहरीक मई १६५५

'सुलेमान' अरीब

ऐ सर्वे-रवाँ ! ऐ जाने-जहाँ ! आहिस्ता गुज़र, आहिस्ता गुज़र।
जी भरके तुझे मैं देख तो लूँ, बस इतना ठहर, बस इतना ठहर॥

न जाने कुफ्रका अंजाम अपने क्या होता ?
हमारे दौरमें लेकिन कोई ख़ुदा न हुआ॥
न हो सका जो मदावाए-ज़ख़्मे लाल-ओ-गुल[9]।
बचाके आँख चमनसे गुज़र गई है सबा[10]॥
गुजर रहा हूँ मुसलसल इक ऐसे आलमसे।
हयात देके मुझे जैसे कोई भूल गया॥

---

१. मुँहतक, २. प्रशंसा करनेका भाव, ३. क़ैद भाग्यमें थी, ४. सन्देश ५. जाल, ६. मुसकान, ७. होंटों और कपोलोंपर, ८. असफलताके मार्गमें, ६. फूलोंके ज़ख्मोंका इलाज, १०. हवा।

'हज़ीं' हकी

इश्क़के अन्दाज़ भी अब हुस्नसे कुछ कम नहीं।
जिस तरफ़ गुज़रे हम इक दुनिया तमाशाई हुई॥
उफ़! वोह अरबाबे-हविस[१] खुलने न पाये जिनके राज़[२]।
हाय! वह अहले-मुहब्बत[३] जिनकी रुसवाई[४] हुई॥
क्यों न हो अब हर अदा उसकी 'हज़ीं' मुझको अज़ीज़[५]।
ज़िन्दगी आख़िर तो है, उसकी ही ठुकराई हुई॥

—निगार जुलाई १९५४

'हफ़ीज़' तायब

हो गई ऐसी क्या ख़ता हमसे?
हो जो तुम यूँ ख़फ़ा-ख़फ़ा हमसे॥
ज़ीस्तकी उलझनोंसे ज़ाहिर है।
ख़ुश नहीं आजकल ख़ुदा हमसे॥
रू-बरू यारके हुआ न बयाँ।
ज़हे-तक़दीर! मुद्दआ हमसे॥

'हफ़ीज़' प्रोफ़ेसर

गहे ज़ख़्म है, गहे राहते-मरहम है इश्क़।
गहे-शोलओ-गहे गिरयए-शबनम है इश्क़॥
हर क़ैदसे हर बन्दसे आज़ाद है इश्क़।
बेगाना ए-रस्मे - ग़मे - उफ़ताद है इश्क़॥

---

१. कामुक, २. भेद, ३. सच्चे प्रेमी, ४. बदनामी, ५. प्यारी।

हबीबअहमद सद्दीक़ी एम० ए०

इलाही ! करके तय किन रफ़अतोंको मैं कहाँ पहुँचा ।
कि यकसाँ पड़ रही हैं अब निगाहें दोस्त-दुश्मनपर ॥

वोह सितमगर है, जफ़ाजू है, सितम-ईजाद है ।
इब्तदाए-रस्मे-उल्फ़त फिर भी की, नाचार की ॥

ख़ूगरे-जौर ही बना देते ।
तुमसे तो यह भी उम्रभर न हुआ ॥

एहतरामे-बेहिजाबीहाए - हुस्ने - दोस्त था ।
लोग यह समझे कि मूसा तूरपर बेहोश था ॥

यूँ देखता हूँ बर्क़को अल्लाहरे बेदिली ।
जैसे चमनमें मेरा कहीं आशियाँ नहीं ॥

ऐ दिल ! सरे-नियाज़को क्या क़ैदे-संगे-दर ।
काबा ही क्या बुरा है जो यह आस्ताँ नहीं ॥

ख़यालमें बसा हुआ है, आश्नाके रूपमें ।
वोह दिलनवाज़ अजनबी कि जिससे गुफ़्तगू नहीं ॥

मुझको एहसासे-रंगो-बू न हुआ ।
यूँ भी अक्सर बहार आई है ॥

खिज़ाँ-ना दीदा, ग़म ना-आश्ना, बेगानए-इसयाँ ।
इलाही किस क़दर मायूसकुन ख़ुल्देबरीं होगी ?

वोह ग़म कि जिससे मयस्सर क़रार होता है।
वोह ग़म तो रहमते-परवर्दिगार होता है॥

न मुसकराके उठाओ नज़र, मेरी जानिब।
कि अब ख़ुशीका तसव्वुर भी बार होता है॥

यह कहके डूब गया आज सुबहका तारा—
"अजीब चीज़ ग़मे-इन्तज़ार होता है"॥

'हैरत' अब्दुलमजीद

वज़अ़दारी लिये जाती है किसीके दर तक।
वरना क्या हाथ बजुज़ रंजो-मलाल आता है॥

बेनियाज़ीका किसीकी वोह असर है दिलपर।
अब ब-मुश्किल ही कोई लबपै सवाल आता है॥

असरे-गर्दिशे-तक़दीर इलाही तौबा।
ओज आने नहीं पाता कि ज़वाल आता है॥

जुरअते-अर्ज़े-तमन्ना तो नहीं कम लेकिन।
अपनी कोताहिए-क़िस्मतका ख़याल आता है॥

जैसे ख़ुद हमने यह दरियाफ़्त किया था उनसे।
ख़तमें लिक्खा हुआ अग़ियारका हाल आता है॥

—आजकल मार्च १९५२

'हुबाब' तरमज़ी

हस्तिए-इश्क़ जब मिटा लेंगे।
हुस्नके दिलपै फ़तह पा लेंगे॥
क्या ख़बर थी कि तेरे दीवाने।
मौतको ज़िन्दगी बना लेंगे॥

तिश्ना कामाने-शौक़ आख़िरकार।
बे पिये तिश्नगी बुझा लेंगे॥
अब नई रोशनीके मतवाले।
इक नया आफ़ताब उछालेंगे॥

तुम न आये तो ख़िल्वते-ग़मका।
आलमे - यासमें मज़ा लेंगे॥
है सलामत अगर जुनूँ अपना।
ख़ुदको खोकर हम उनको पा लेंगे॥

अब न भड़केंगे अश्कके शोले।
दामने - हुस्नकी हवा लेंगे॥
ज़िन्दगी धूप-छाँव है ऐ दोस्त!
ग़मसे उकताके मुसकरा लेंगे॥

इश्क़की राहमें फ़ना होकर।
हुस्ने - मासूमकी दुआ लेंगे॥
क्या पता था कि आप यूँ भी कभी?
दिल चुराकर नज़र चुरा लेंगे॥

हम बदल देंगे इश्क़के दस्तूर।
अपनी राहें अलग निकालेंगे॥
डूबने वाले बहरे-ग़ममें 'हुबाब'!
कब तक एहसाने-नाख़ुदा लेंगे?

—तहरीक सितम्बर १९५४

लेखककी अन्य रचनाएँ

उर्दू-शाइरी और उसका इतिहास

उत्तरप्रदेश-सरकार-द्वारा पुरस्कृत

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन—

"यह एक कवि-हृदय, साहित्य-पारखीके आधे जीवनके परिश्रम और साधनाका फल है। गोयलीयजी-जैसे उर्दू-कविताके मर्मज्ञका ही यह काम था, जो कि इतने संक्षेपमें उन्होंने उर्दू-छन्द और कविताका चतुर्मुखीन परिचय कराया। संग्रहकी पंक्ति-पंक्तिसे उनकी अन्तर्दृष्टि और गंभीर अध्ययनका परिचय मिलता है। मैं समझता हूँ इस विषयपर ऐसा ग्रन्थ वही लिख सकते थे।"

द्वितीय संस्करण

पृष्ठ सं० ६४० ● मूल्य आठ रु०

डॉ० अमरनाथ झा—

"गोयलीयजीने बड़े परिश्रमसे इस पुस्तकको लिखा है। इसमें सभी प्रमुख कवियोंका उल्लेख है, उनके जीवनकी मुख्य बातें लिख दी गयी हैं; जिस वातावरणमें उन्होंने कविता लिखी, उसका वर्णन है। उनके काव्य-गुरु और शिष्योंके नाम बताये गये हैं। उनकी रचनाओंके गुण-दोष उदाहरणोंके साथ वर्णन किये गये हैं। इसके पढ़नेसे उर्दू कविताका पूरा परिचय मिलता है।" ● प्रथम भाग

पृ० सं० ७८४ ● मूल्य आठ रु०

शेर-ओ-सुख़न [भाग २]

प्राचीन उस्ताद शाइरोंके वर्त्तमानयुगीन ख्यातिप्राप्त प्रतिष्ठित योग्य उत्तराधिकारी—साकिब, असर, दिल, रियाज़, जलील, सफ़ी, अज़ीज़ आदि १४ लखनवी शाइरोंका जीवन-परिचय एवं कलाम।

शेर-ओ-सुख़न [भाग ३]

देहलवी रंगके शाइरे-आज़म—शाद अज़ीमाबादी, हसरत, फ़ानी, असग़र, जिगर, यगाना, अमजद, वहशत, कैफ़ी, आदिका परिचय एवं चुना हुआ कलाम।

शेर-ओ-सुख़न [भाग ४]

सीमाब, जोश मलसियानी, महरूम ताजवर, अकबर हैदरी, आसी उदनी, बेखुद, नूह, साइल, आग़ा शाइर, नसीम आदिका चुना हुआ कलाम और परिचय।

शेर-ओ-सुख़न [भाग ५]

प्राचीन और वर्तमान ग़ज़लगोईपर तुलनात्मक अध्ययन; हरजाई, बेवफ़ा, ज़ालिम माशूक़के एवज़ नेक और पाक हबीबका तसव्वुर, रोने बिसूरनेकी प्रथा बन्द, रंजो-ग़मका मुसकान भरा स्वागत, निराशावादका अन्त।

प्रारम्भसे १९५८ तककी घटनाओंका ग़ज़लपर प्रभाव।

सजिल्द • आकर्षक कवर

द्वितीय संस्करण • प्रत्येक भागका मूल्य तीन रुपये

मौलिक कहानियाँ
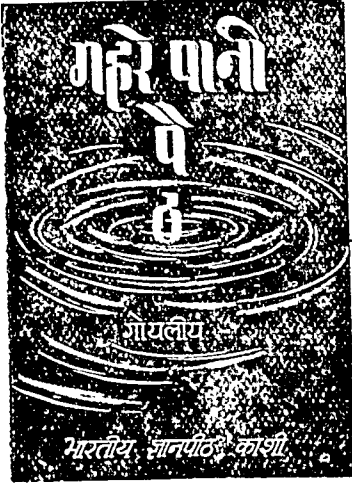
आज दैनिक—

"ये कहानियाँ चरित्रनिर्माण तथा अतीतके अनुभवोंसे हमें लाभान्वित करती हैं। 'गहरे पानी पैठ' में श्री गोयलीयने जिन रत्नोंको हिन्दी-संसारमें सुलभ किया है, निश्चय ही उनसे हमारा जीवन सुखी और सम्पन्न हो सकता है। लेखनशैलीमें प्रभावोत्पादकता और मार्मिकता है। पुस्तक मननीय और संग्रह योग्य है।"

द्वितीय संस्करण

पृष्ठ सं० २२६ ● मूल्य ढाई रुपये

विशालभारत—

"प्रस्तुत पुस्तकमें जीवन-निर्माण एवं उत्साह, प्रेरणा तथा शक्ति प्रदान करनेवाली १०२ लघु कथाएँ हैं। इनका स्वरूप लघु है, पर ज्ञानगुम्फनकी दृष्टिसे सागर जैसी प्रौढ़ता, विशालता तथा विस्तार है।"

नवभारतटाइम्स दिल्ली—

'जिन खोजा तिन पाइयाँ' को यदि हिन्दीका हितोपदेश कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। वही अनुभव, वही ज्ञान, वही विवेक।

द्वितीय संस्करण

पृ० सं० २१८ ● मूल्य ढाई रुपये

कहानियाँ • संस्मरण एवं परिचय
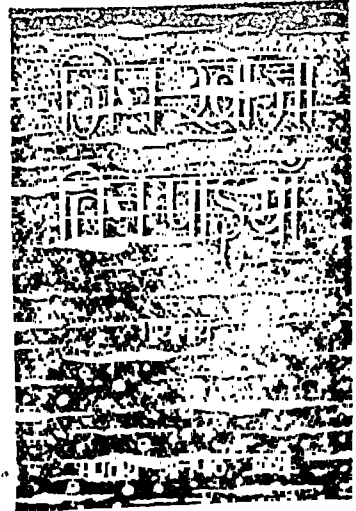
उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत

युगचेतना—

गोयलीयजीकी लघु-कथाओंकी विशेषता यही है कि वे अपने आपमें तीखी मार्मिकता लिये हुए हैं। उनसे जहाँ एक ओर पाठकका ज्ञान वर्धन होता है, वहाँ दूसरी ओर वे शिक्षाप्रद और मनोरंजक भी होती हैं। उनकी भाषाशैली बहुत सरल और रोचक है। मौलिकता इनकी सबसे बड़ी विशेषता है। मुहावरेदार भाषा और रोचक शैलीने मिलकर इन्हें बहुत महत्वपूर्ण बना दिया है यह सभी कहानियाँ रोमांचित कर देनेवाली हैं।

सचित्र

पृष्ठ सं० १४८ • मूल्य ढाई रुपये

१९०१ से १९५२ तकके २९ दिवंगत और आठ वयोवृद्ध प्रमुख दि० जैन कार्यकर्ताओंके संस्मरण एवं सचित्र परिचय।

जैन सन्देश मथुरा—

"प्रत्येक परिचय कहानीसे कम रोचक नहीं है।"

राष्ट्रभारती—

"प्रकाशन बहुत ही सुन्दर है। गेट-अप बहुत आकर्षक है।"

पृष्ठ सं० ६२० • मूल्य पाँच रुपये